बाइबल द्वारा प्रचार

मरकुस रचित सुसमाचार

माईकल ईटन

HARVEST MISSION PUBLICATIONS
V-82, SECTOR-12, NOIDA (U.P.)

Preaching Through the Bible: Mark
Bible Dwara Prachar (Markus Rachit Susamachar)

Copyright @ Michael Eaton

First Edition : July 2010

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in retrieval system, or transmitted any form or by any means, electronic,mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the publisher.

Published in Hindi by **Harvest Mission Publishers** with permission.

Contact Address:
V – 82 Sector- 12, NOIDA, UP- 201301
Tel : 0120- 2550213, 4264860, 6417828, 9811373357
bijujo@bijujohn.com, bijujohn@roadrunnerworldmission.com
website: www.harvestpublishers.org

Printed at : **New life Printers (P) Ltd,** New Delhi

विषय - सूची

अध्याय 1 मरकुस के सुसमाचार का परिचय 5
अध्याय 2 परमेश्वर द्वारा यीशु को सेवकाई के
लिए तैयार किया जाना (मरकुस 1:1-20) 8
अध्याय 3 यीशु - मसीहा (मरकुस 1:12-45) 13
अध्याय 4 एक स्नेही उद्धारकर्त्ता (मरकुस 2:1-17) 17
अध्याय 5 परमेश्वर के राज्य में अनुग्रह (मरकुस 2:18-3:6) 21
अध्याय 6 शिष्यों का एक परिवार (मरकुस 3:7-35) 26
अध्याय 7 परमेश्वर के राज्य के दृष्टांत (मरकुस 4:1-20) 30
अध्याय 8 परमेश्वर के राज्य के प्रति प्रतिक्रिया (मरकुस 4:21-34) 36
अध्याय 9 यीशु, सभी का प्रभु (मरकुस 4:35-5:20) 40
अध्याय 10 मृत्यु और बीमारी पर प्रभु (मरकुस 5:21-43) 44
अध्याय 11 नासरत के विशेषज्ञ (मरकुस 6:1-6अ) 48
अध्याय 12 विस्तार और विरोध(मरकुस 6: 6 ब-29) 52
अध्याय 13 यीशु की ओर से बहुतायत का प्रबन्ध(मरकुस 6:30-56) 57
अध्याय 14 अनुपयोगी कर्मकाण्डवाद (मरकुस 7:1-23) 61
अध्याय 15 विश्वास की सामर्थ (मरकुस 7:24-37) 65
अध्याय 16 एक दूसरा स्पर्श (मरकुस 8:1-26) 69
अध्याय 17 यीशु का मसीहा के रूप में प्रकाशन (मरकुस 8:27-30) 73
अध्याय 18 क्रूस का प्रकाशन (मरकुस 8:31-9:1) 77
अध्याय 19 रूपान्तरण (मरकुस 9:2-13) 81
अध्याय 20 निरन्तर प्रार्थना करने की शक्ति (मरकुस 9:14-29) 86
अध्याय 21 महानता का प्रस्ताव (मरकुस 9:30-50) 90
अध्याय 22 तलाक, बच्चे, धन (मरकुस 10:1-31) 95

अध्याय 23 परमेश्वर के राज्य में महानता (मरकुस 10:32-52) 99
अध्याय 24 फल ढूंढना (मरकुस 11:1-26) 104
अध्याय 25 अधिकार का एक प्रश्न (मरकुस 11:27-12:12) 108
अध्याय 26 प्रश्नों का एक दिन (मरकुस 12:13-44) 112
अध्याय 27 यरूशलेम का भविष्यवाणी किया गया पतन (मरकुस 13:1-23) ... 117
अध्याय 28 मनुष्य के पुत्र का आगमन (मरकुस 13:24-37) 122
अध्याय 29 क्रूस के तीन दृष्टिकोण (मरकुस 14:1-11) 127
अध्याय 30 अन्तिम भोज (मरकुस 14:12-26) 131
अध्याय 31 विश्वासयोग्य उद्धारकर्त्ता, दुर्बल शिष्य (मरकुस 14:27-42) .. 135
अध्याय 32 सहानुभूति के योग्य (मरकुस 14:43-72) 139
अध्याय 33 निर्दोष को दोषी पाया गया (मरकुस 15:1-20) 143
अध्याय 34 क्रूसीकरण और गाड़ा जाना (मरकुस 15:21-47) 147
अध्याय 35 यीशु जीवित है! (मरकुस 16:1-8) 151

अध्याय 1

मरकुस के सुसमाचार का परिचय

चारों सुसमाचार यीशु का चित्रण हैं। वास्तव में वे जीवन गाथा नहीं हैं, एक 'जीवन गाथा' में जिन तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है, इनमें उन बहुत सी बातों को जोड़ा नहीं गया है। इसकी अपेक्षा वे हमारी उन चीज़ों को देखने में सहायता करते हैं जिसकी हमें यीशु को जानने के लिए आवश्यकता है।

मसीही जीवन यीशु में जीवित रहने का एक विषय है। *''उसकी परिपूर्णता से हम सब ने प्राप्त किया''(यूहन्ना1:16)। हमें बहुत अधिक यीशु को देखने की ज़रूरत है। हम इसी तरह से रहते हैं, 'यीशु मसीह कल और आज और युगानुयुग एक समान है''* (इब्रानियों13:8)। जब हम उसके इस पृथ्वी ग्रह पर चलने को वैसा ही देखते हैं हम जान सकते हैं कि वह आज भी वैसा ही है। हमें उसकी सामर्थ और उसके अधिकार को जानने की आवश्यकता है तथा यह देखने की भी आवश्कता है वह क्रूस पर हमारे लिए मारा गया। हमें यह जानने की ज़रूरत है कि वह आज भी हमारे लिए जीवित है।

चारों सुसमाचार भिन्न-भिन्न तरीकों से यीशु को हमारे लिए वास्तविक बनाते हैं। पवित्र आत्मा के द्वारा, यीशु आज भी हमारे लिए वास्तविक है। चारों सुसमाचारों के द्वारा हमें यह विवरण मिलता है कि यीशु को क्या पसंद था तथा वास्तव में उसने क्या किया। हम यीशु के बारे में जो कुछ जानना चाहते हैं उस बारे में हम प्रत्येक चीज़ को नहीं जान पाते हैं परन्तु हमारे पास पर्याप्त है। हमें पवित्रात्मा द्वारा यीशु को जानने के लिए पर्याप्त जानकारी दी गई है।

मरकुस जिसने इस सुसमाचार को लिखा, वह मरियम नामक एक विध वा का पुत्र था, जिसके घर का प्रयोग आरम्भिक मसीहियों द्वारा यरूशलेम में किया जाता था (देखें प्रेरित.12:12)। बरनबास उसका चचेरा भाई था। माना जाता है कि यह सुसमाचार पतरस के मित्र मरकुस द्वारा 50 ई. में लिखा गया था। प्रथम अध्यायों में वह यीशु का परिचय देता है(1:1-20), और उसके बाद स्पष्ट रूप से यीशु के विरोध के विस्तार की व्याख्या देता है। टीकाकारों ने प्राय: इस पर ध्यान दिया है कि मरकुस 1:21-3:6 हमें धीरे-धीरे यीशु के विरोध की उठने की कहानी को कैसे बताता है। मरकुस ने यीशु को एक शिक्षक तथा आश्चर्यकर्म करनेवाले के रूप में अधिकार दिखाने में रुचि ली है, तौभी इसी अधिकार के कारण उसके शत्रु उससे घृणा करने लगे थे।

3:7-6:13 में मरकुस कुछ विषयों से हटकर यीशु के शिष्यों की शिक्षा पर ध्यान करता है। तत्पश्चात् (6:14:8:26)अतिरिक्त सुसमाचार प्रचार सेवकाई दी गई है, परन्तु उसके साथ-साथ एक महान अस्वीकृति भी है। यीशु ने यरूशलेम की ओर यात्रा करते हुए (8:27:10:52) अपने शिष्यों को शिष्यता के कई पहलुओं के बारे में शिक्षण दिया है। इसके बाद यीशु के यरूशलेम में प्रवेश करने का वर्णन मिलता है (11:1-15:47)। यीशु की मृत्यु में मरकुस की विशिष्ट रुचि देखने को मिलती है। कहानी का एक संक्षिप्त निष्कर्ष है, यीशु कब्र में नहीं पड़ा रहा वह मृत्तकों में से जी उठा है। यहां आकर मरकुस के सुसमाचार का समापन हो जाता है (16:8; मरकुस 16:9-20 बाद के संस्करण हैं)।

मरकुस के सुसमाचार में कोई छिपा अर्थ नहीं है। हमें ऐसे किसी तरह के छिपे थियोलोजिकल विवादों को देखने की आवश्यकता नहीं है जिसके कारण इसे लिखा गया हो। इसमें यीशु द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों को छोड़ और

किसी तरह के अन्य प्रतीक नहीं हैं। मरकुस का अर्थ सतह पर ही मिल जाता है। उसने यीशु के बारे में मूल सच्चाइयों के आधार पर निष्कपट रूप से लिखा है: किस तरह उसे अस्वीकृत किया गया, किस तरह से वह एक अलौकिक सामर्थ तथा सम्मोहक अधिकार वाला था, किस तरह वह क्रूस पर बहुतों के प्रायश्चित्त के लिए मारा गया। ।

अन्तिम टिप्पणी

मेरे शब्द आर गुंडरे के मार्क के आरम्भिक अनुच्छेदों को गुंजित करते हैं। (अर्डमेंन्स, 1993, पृ01), यद्यपि मैं मरकुस द्वारा क्रूस का समर्थन करने की बजाए उसकी सादगी पर बल देता हूं।

अध्याय 2

परमेश्वर द्वारा यीशु को सेवकाई के लिए तैयार किया जाना है (मरकुस 1:1-20)

मरकुस के सुसमाचार के आरम्भ के पदों में मरकुस यीशु का परिचय देता है (1:1-20) तथा उसके बाद उन घटनाओं को संबन्धित करना आरम्भ करता है जो गलील में यीशु के प्रति विरोध के उठने में नेतृत्व करती हैं (1:21-3:6)

1 **मरकुस हमें बताना चाहता है कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है।**

उसकी पुस्तक का आरम्भ उसके विषय के एक कथन से होता है: *'परमेश्वर के पुत्र यीशु मसीह के सुसमाचार का आरम्भ'* (1:1)। सुसमाचार या शुभ-संदेश मरकुस के मनपसंद शब्दों में से हैं (देखें 8:35;10:29; 13:10)। यह मसीही विश्वास और मरकुस के सुसमाचार के बारे में है: सुसमाचार का अर्थ है कि यीशु मसीह में या उसके द्वारा जो कुछ परमेश्वर ने किया है। मसीही विश्वास एक प्रथम या सर्वप्रथम दर्शनशास्त्र नहीं है और न ही अधिकार प्राप्त करने के

लिए एक बौद्धिक प्रणाली। यह कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं है जिसे पूरा करने के लिए मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिए। इसका **आरम्भ** परमेश्वर के साथ अनुभव प्राप्त करने के निमंत्रण से नहीं होता है। इसका आरम्भ एक घोषणा से होता है। एक घोषणा, कि परमेश्वर ने क्या किया है।

शभु संदेश एक व्यक्ति है–यीशु-यीशु में परमेश्वर ने पहले से ही कार्य कर दिया है। उसने पहले से ही कुछ कर दिया है। जो कुछ होना है वह यह कि हमें इस बारे में बताया जाना है। परमेश्वर ने संसार के लिए पहले से ही उद्धार का प्रबन्ध कर दिया है।

आप एक घोषणा के साथ क्या करते हैं? एक दर्शनशास्त्र के साथ-आप इसका अध्ययन करें। प्रयत्न के एक कार्यक्रम के साथ-आप इसे करें। एक अनुभव के साथ आप इसे महसूस करें। परन्तु आपको एक घोषणा के साथ क्या करना है? आप इस पर विश्वास करें!

मरकुस हमें बताना चाहता है कि यीशु कौन है। वह 'यीशु मसीह, परमेश्वर का पुत्र है'। कुछ यूनानी हस्तलिपियों ने यीशु मसीह, *परमेश्वर का पुत्र,* शब्दों को छोड़ दिया है, परन्तु जिन हस्तलिपियों में ये शब्द हैं, मेरे विचार से वे सही हैं। मरकुस का सुसमाचार लगातार इस पर बल देता है कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है (1:11;3:11; 8:38; 9:7;12:6), अत: यह स्वीकार्य है कि उसकी पुस्तक में इस केन्द्रीय विषय को शीर्षक के रूप में रखना चाहिए। कुछ शास्त्रियों ने पुस्तक के शीर्षक को छोटा तथा तीव्र बनाने के लिए संभवत: इसे हटा दिया है।

सुसमाचार के 'आरम्भ' से मरकुस का क्या अभिप्राय है? संभवत: यह केवल यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले की सेवकाई का उल्लेख करता है, क्योंकि बाइबल प्राय: इस बात को बताती है कि इतिहास के इस कठिन युग का आरम्भ यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले के साथ हुआ (देखें प्रेरित 1:21-22; 10:37; 13:24)।

2. **मरकुस हमें उन तीन चीज़ों के बारे में बताता है जो परमेश्वर द्वारा यीशू को सेवकाई के लिए तैयार किये जाने से संबन्धित थी।**

प्रथम, यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले ने उद्धार के उस स्वरूप को स्पष्ट किया जो कि आनेवाला था। मलाकी और यशायाह दोनों ने ही उस मार्ग के बारे

में बताया है जिसकी योजना परमेश्वर ने उसके आगमन के लिए बनाई थी।

मरकुस 1:2-3 मलाकी 3:1 और यशायाह 40:3 को प्रमुख भविष्यद्वक्ता के रूप में बताते हुए उद्धृत करता है। यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले ने इस नमूने की पूर्ति की। यूहन्ना ने इसे स्पष्ट किया कि **यीशु का 'मसीह होना' स्वरूप में आत्मिक होगा।** लोगों ने एक राजनैतिक मसीहा की अपेक्षा की थी। वे अभी भी ऐसा कर रहे हैं। लोग पापों की क्षमा तथा एक शुद्ध विवेक रखने की तुलना में राजनैतिक प्रगति तथा आर्थिक लाभ के प्रति अधिक चिन्तित थे। संसार के दरिद्र राष्ट्र प्राय: वित्तीय सहायता के साथ-साथ राजनैतिक समर्थन की भी मांग करते हैं और जब वे ऐसा करते हैं तो इसके पीछे भी कोई छिपी हुई प्रेरणा होती है।

संसार के लिए परमेश्वर की योजना का आरम्भ पाप के लिए उद्धारकर्त्ता को भेजने से होता है। यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला पुराने नियम के भविष्यद्वक्ताओं का एक जीवित संसार था। उसने लोगों को पश्चात्ताप करने का बुलावा दिया, और उसने उन लोगों को बपतिस्मा दिया जिन्होंने पश्चात्ताप करने के लिए अपनी इच्छा को प्रगट किया। यूहन्ना का बपतिस्मा कोई आत्मिक जादू नहीं था। इसने यंत्रवत् रूप से किसी को नहीं बचाया, परन्तु इसने पश्चात्ताप को व्यक्त किया (1:4), और पश्चात्ताप परमेश्वर की क्षमा के अनुभव को लेकर आया।

यूहन्ना का प्रचार एक क्रान्ति को लेकर आया (1:5)। उसने एक संभावित व दर्शनीय सरल जीवन पद्धति का एलिय्याह के नमूने पर चलते हुए पालन किया (1:6)। उसने उस यीशु की ओर संकेत किया जिसका महानतम् उपहार पवित्रात्मा को देना होगा (1:7-8)।

दूसरा, **यीशु को पवित्रात्मा को ग्रहण करने की आवश्यकता हुई।** एक ऐसा समय आया जब यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले की सेवकाई समाप्त हो गई और यीशु की सेवकाई का आरम्भ हुआ। उसने नासरत को छोड़ दिया, जहां उसने अपने आरम्भिक जीवन का अधिकांश समय बिताया था और यूहन्ना से बपतिस्मा लिया (1:9)। उसके बपतिस्मे ने जीवन के एक नये मार्ग की वचनवद्धता को व्यक्त किया। यीशु के लिए यह सही रूप

में पश्चात्ताप को व्यक्त नहीं कर सका-क्योंकि उसके पास पश्चात्ताप करने को कुछ न था! परन्तु उसे लोगों के साथ गिना गया। उसने इस तरह से इसे लिया, मानों वह भी उनके समान एक पापी था। जीवन के एक नये मार्ग की ओर यह उसकी वचनवद्धता थी और विशेष रूप से अपनी सेवकाई के लिए उसकी वचनवद्धता जिसमें उसे क्रूस पर मरना था। जैसे ही उसने स्वयं को परमेश्वर के प्रति इस नये मार्ग के लिए वचनवद्ध किया, उसे पवित्रात्मा दिया गया (1:10)। पवित्रात्मा एक कबूतर के समान था, एक पक्षी जिसे उदारता और शुद्धता के साथ जोड़ा जाता है। यीशु द्वारा आत्मा को ग्रहण करना उसका परिवर्तित होना नहीं था! यह उसके पुत्रत्व की एक मुहर थी ('तू मेरा प्रिय पुत्र है), और उसकी सेवकाई के लिए एक नियुक्ति (1:11)''जिसमें मैं प्रसन्न हूँ' यशा. 42:। को गुंजित करते हैं, और इस बात की पुष्टि करते हैं कि यीशु यशायाह द्वारा भविष्यद्वाणी किया गया परमेश्वर का दुख उठाने वाला सेवक है।

तीसरा, **यीशु को परमेश्वर की इच्छा को करने के लिए अपनी इच्छा को प्रमाणित करना था। इसके अलावा परीक्षाओं ने एक भिन्न दिशा की ओर उसे चलाया।** आत्मा उसे यहूदिया के जंगल में लेकर गया(1:12; 'भेजा' अनुवाद के लिए अति कठिन है।) यह प्रार्थना और तैयारी करने का समय था, और उस समय परीक्षाएं यीशु पर आई कि उसे परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने से रोकें। क्या उसे उस एक मार्ग में मसीह होना था जिसमें पिता उसका नेतृत्व कर रहा था या फिर कुछ अन्य मार्गों में मरूस्थल के जानवर निकट ही थे परन्तु (शेरों की मांद में दानिय्येल के समान पिता ने उसे सुरक्षित रखा। स्वर्गदूतों ने उसकी सेवा की (1:13) और उसे जीवित रखा। चूंकि यीशु पिता की इच्छा को पूरा कर रहा था, अत: उसे पिता की सुरक्षा प्राप्त थी।

3. आरम्भ के दिनों से ही यीशु की कर्मियों को प्रशिक्षित करने में रुचि थी!

यूहन्ना के जेल में डाले जाने के पश्चात् यह इस बात का संकेत था कि यीशु की सेवकाई की एक प्रमुख अवस्था का आरम्भ होना था (1:14)। उसने प्रचार करना आरम्भ किया। उसका विषय शुभ संदेश था कि

परमेश्वर की राजकीय शक्ति कार्यरत् है। उसने घोषणा की कि उसका स्वयं का आगमन परमेश्वर के राज्य में एक नई अवस्था थी और उसने पश्चात्ताप और विश्वास की प्रतिक्रिया दिखाने की मांग की (1:15)।

इस समय पर वह अपने साथ कार्य करने के लिए प्रथम कर्मियों को लेकर आया (1:16-20)। हम सदैव उन कर्मियों को प्रशिक्षित करना पसंद नहीं करते हैं जो हमारे समान ही कार्य करते हैं। यह संभव है कि हमें सहयोगियों की आवश्यकता हो, परन्तु हम प्रतिस्थापन नहीं चाहते हैं। बहुतों को यह भय होगा कि सहकर्मी उनकी सेवकाई पर अधिकार कर लेंगे। विकासशील देशों में 'विशेषज्ञ' पश्चिम से आ सकते हैं। वे एक अच्छा कार्य करना चाहते हैं, परन्तु प्राय: वह किसी को प्रशिक्षित करना नहीं चाहते कि कोई और उनके कार्य पर अधिकार कर ले। यीशु की इसमें से कोई भी विचारधारा नहीं थी। आरम्भ के दिनों से ही वह लोगों को प्रशिक्षण दे रहा था कि जिस कार्य को वह कर रहा था, वे उसमें से उससे कुछ को ले लें । निस्सन्देह कोई भी बहुतों की छुड़ौती के लिए नहीं होगा (मर.10:45), परन्तु शिष्यों को **'अपना क्रूस उठाने'** के लिए कहा गया । यीशु उत्तराधिकारियों को प्रशिक्षित कर रहा था। गलील में उसका सबसे पहला कार्य प्रशिक्षार्थियों का चुनाव करने का था। उन्हें उसका अनुसरण करना था (अक्षरश:), प्रशिक्षण कार्य को प्राप्त करने के लिए।

अध्याय 3

यीशु-मसीहा
(मरकुस 1:21-45)

मरकुस अब यीशु की सेवकाई के एक जटिल दिन (1:21-39) तथा उस कहानी के चित्रण को प्रस्तुत करता है, जो उस अगली अवस्था का वर्णन करती है कि उसके कार्य में क्या हुआ (1:40- 45)। हम एक जटिल दिन की ओर देखते हुए आरम्भ करेंगे।

1. **यीशु एक महान अधिकार वाला व्यक्ति था।** वह नम्र था और स्वयं को प्रमाणित करने के लिए उसने कोई दिखावा नहीं किया। वह स्पष्ट रूप से एक ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसके लिए संसार की आंखों में एक विशेष प्रतिष्ठा थी। इसके अलावा उसका वर्णन यीशु के रूप में सरलता से किया गया है। उसे एक यहूदी नाम के अतिरिक्त और किसी अन्य चीज़ के लिए नहीं जाना जाता है। यीशु ने स्वयं के लिए किसी भी अभिलाषी शीर्षक की चाह नहीं की। वह चाहता है कि लोग उसे देखें कि वह आत्मिक दृष्टि से कैसा है, न कि उन दावों को करे जैसा अन्य करते हैं। इसलिए उसने स्वयं को कभी 'यीशु रब्बी' नहीं कहा। उसकी

कोई राजनैतिक शक्ति नहीं है; वह 'यीशु-गवर्नर' नहीं है। वह तो केवल यीशु है।

और तौभी उसके पास महान अधिकार है। लोग उसके **शिक्षा** देने के अधिकार पर आश्चर्य करते थे (1:21-22) तब वे उसके इस अधिकार पर आश्चर्य करते थे जो उसको **दुष्ट-आत्माओं के क्षेत्र** पर प्राप्त था **(1:23-27)।** अपनी ओर से प्रसिद्ध होने का प्रयास न करने पर भी वह प्रसिद्ध हो गया। वह प्रसिद्धि की ओर नहीं जा रहा था, परन्तु बिना प्रयास किये ही उसे यह प्राप्त हो गई थी। उसके बारे में समाचार चारों ओर फैल गया था (1:28)। जब एक पुरुष या स्त्री में आत्मिक सामर्थ होती है तो समाचार बाहर जाता है! इसके लिये किसी भी विशेष विज्ञापन की आवश्यकता नहीं होती है। यह यीशु के साथ हुआ; यह हमारे साथ भी होगा।

यीशु शमौन पतरस के घर में आया (1:29)। उसे **बीमारियों** पर अधिकार प्राप्त है और ऐसा ही पतरस की सास के बारे में बताया गया है। उसने उसको चंगा किया (1:30-31)। पूरे संसार भर में लोगों का ध्यान बीमारियों की ओर ही रहता है। लोग यीशु को पाप से बचाने वाले उद्धारकर्त्ता से कहीं अधिक रोगों को चंगा करने वाले के रूप में देखना चाहते हैं।

यीशु ने अपनी चंगाईयों के द्वारा अपने विश्वास को प्रगट किया था। वहां किसी तरह की कोई चालबाज़ी या धोखा नहीं था। यह स्पष्ट है कि जब यीशु ने बिमारों के लिए प्रार्थना की, चींज़े घटीं। मरकुस 1:32-34 में हम उसकी महानता को देखते हैं। दर्जनों लोग उसे देखना चाहते थे और मरकुस 1:21-39 केवल 24 घंटे की घटनाओं का विवरण देता है!

2. **यीशु एक ऐसा व्यक्ति था जो निरन्तर महान अधिकार के स्रोत के निकट रहा।** यीशु को अपना अधिकार कहां से प्राप्त हुआ? कोई सोच सकता है कि चूंकि वह परमेश्वर का पुत्र है, अत: उसके पास अधिकार है। यह सच है, परन्तु वह इसकी तुलना में उससे कहीं अधिक है। यीशु ने आत्मा के बपतिस्मे को ग्रहण किया। कोई सोच सकता है कि परमेश्वर का पुत्र जिसने पवित्रात्मा के बपतिस्मे को प्राप्त किया उसके पास

आवश्यक अधिकार तो होगा ही, परन्तु आत्मा को ग्रहण करने के पश्चात् क्या उसे किसी और चीज़ को भी प्राप्त करने की आवश्यकता थी? हाँ, उसे प्रार्थना करने की आवश्यकता थी। और इसलिए एक अत्यंत व्यस्त समय के बीच भी, उसने स्वयं से अलग होकर प्रार्थना की (1:35)

3. **यीशु एक ऐसा व्यक्ति था जिसकी सेवकाई के लिए तैयारी बुद्धि से भरपूर थी।** मरकुस 1:21-39 की एक दिन की गतिविधि और 2:1-3:6 में उठने वाले विरोध के विवरण के बीच एक अतिरिक्त कहानी को लिया गया है। प्रमुख बात यह है कि यह वह घटना थी जिसने यीशु को अपनी सेवकाई की इस अवस्था में प्रसिद्ध बना दिया। एक कोढ़ी शुद्ध होने के लिए उसके पास आया (1:40)। करुणा से भरकर यीशु ने उसे चंगा किया (1:41-42)।

यीशु की करुणा उसके अधिकार को संतुलित करती है। अधिकार करने वाले लोगों में प्राय: अधिक करुणा नहीं पाई जाती है। करुणा करनेवाले लोगों में सामान्यता इतना अधिकार नहीं पाया जाता है यीशु में दोनों ही पाए जाते हैं।

यीशु कठोरता के साथ उस व्यक्ति को चेतावनी देता है कि जो कुछ उसके साथ हुआ, उस बारे में वह किसी और को न बताए। इस समय पर यीशु अपने प्रचार के कार्य में लगे रहना चाहता था। उसे प्रसिद्ध होने की जल्दी नहीं थी! यदि वह प्रसिद्ध हो जाता है तो यह उसके लिए केवल बाधा ही उत्पन्न करेगा, क्योंकि, यीशु जानता था कि यहूदी अधिकारी उसकी गतिविधियों से क्रोधित होंगे। यीशु को यरूशलेम से हटने के लिए गलील आना था। उसके पास करने को बहुत कुछ था तथा वह नहीं चाहता था कि यहूदी अधिकारी किसी भी तरह से बाधक बनें, इसलिए इस चंगे हुए कोढ़ी को शांत रहने के लिए कहा गया था!

अधिकारिक शिक्षा, दुष्टात्माओं पर अधिकार, विश्वास द्वारा रोगों को निकालने की योग्यता—ये सभी वे चिन्ह थे कि यह नम्र व्यक्ति जो वास्तव में परमेश्वर का पुत्र था क्षमा, शुद्धिकरण और हर तरह के छुटकारे को लेकर आया।

परन्तु यीशु की महान करुणा को प्राप्त करने के बाद उसमें यीशु के कहे अनुसार करने की कृतज्ञता नहीं थी। उसने जल्द ही समाचार चारों ओर फैला दिया, और कुछ समय तक यीशु गलील के शहरों में न जा सका।

यह छोटी कहानी इस बात का उदाहरण देती है कि हमें यीशु के प्रति कैसे कृतज्ञता प्रगट करनी है, परन्तु हमेशा वह इसे प्राप्त नहीं करता है। यीशु जानता था कि वह जब उस व्यक्ति को शांत रहने के लिए कह रहा था तो वह क्या कर रहा था। चंगे हुए कोढ़ी की अनाज्ञाकारिता ने वास्तव में यीशु को नुकसान पहुंचाया और समय से पहले उसे अधिकारियों के विरोध का सामना करना पड़ा।

यीशु के पास सर्वोच्च अधिकार है। उसके चमत्कार उसके विश्वास का प्रमाण हैं और कुछ भी करने के लिए उसके सामर्थ के परिणाम वे किसी स्त्री या पुरुष की सामर्थ के द्वारा 'कार्यान्वित' नहीं हो सकते हैं। कोढ़ी विश्वास द्वारा चंगाई को नहीं ले रहा था, वह स्वयं को मसीह की दया पर डाल रहा था। चमत्कार इसका उदाहरण देता है कि यीशु क्या करने में समर्थ है, तथा जीवन के प्रत्येक पहलू पर उसके अधिकार का भी। यह उस नये आकाश और नई पृथ्वी का पूर्वानुभव है जिसमें हर तरह की बीमारी पूरी तरह से ठीक हो जाएगी, फिर कभी वापिस न लौटने के लिए ।

इसी बीच मरकुस का सुसमाचार हमें यीशु को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखने के लिए आमंत्रित करता है जो अधिकार और करुणा का संयोजन है। हमें उसके पास हर तरह के दोष के शुद्ध होने के लिए बुलाया गया है, चाहे प्राकृतिक साधनों से या उसके वचन की विशुद्ध सामर्थ के द्वारा। प्रत्येक चीज़ जो नये नियम के समयों के 'कोढ़' का प्रतीक है। यह न केवल आधुनिक कोढ़ था परन्तु इसमें छूत के चर्म रोगों का संग्रह था-उसकी चंगाई की सामर्थ के अधीन आती है। 'कोढ़' दुख, अकेलेपन तथा आलोचना को लेकर आया, और इसे परमेश्वर के न्याय के चिन्ह के रूप में जाना गया। जिन देशों ने परमेश्वर की आज्ञा का पालन किया उनसे इस तरह की महामारियों से स्वतंत्र होने की प्रतिज्ञा की गई, परन्तु इस्राएल यीशु के दिनों में स्पष्ट रूप से बिमारियों और रोगों से भरपूर था।

आधिकारिक शिक्षा, दुष्टात्माओं पर अधिकार, उसके विश्वास द्वारा रोगों को दूर करने की योग्यक-वे सभी इस बात का चिन्ह थे कि यह नम्र व्यक्ति वास्तव में परमेश्वर का पुत्र था, जो प्रत्येक तरह की क्षमा शुद्धीकरण तथा छुटकारे को लेकर **आया**।

अध्याय 4

एक स्नेही उद्धारकर्त्ता
(मरकुस 2:1-17)

मरकुस ने यीशु की सेवकाई की आरम्भिक तैयारी का परिचय दिया है (1:1-20), तत्पश्चात् यीशु की आरम्भिक सेवकाई के एक नमूने दिन का (1:21-39) और एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना का विवरण दिया गया है जिसने यीशु को सबके ध्यान का केन्द्र बना दिया (1:40- 45)।

इसके बाद एक लकवे के रोगी को क्षमा कर चंगा किया गया (2:1-12), और लेवी को यीशु का अनुयायी होने की बुलाहट दी गई (2:13-17)। ये घटनाएं यीशु के विरूद्ध शत्रुता को जगाती हैं। मरकुस हमें यह दिखाना चाहता है कि देश के अगुवों में कैसे यीशु के विरुद्ध घृणा उत्पन्न हुई। यह मरकुस 1:45 का चंगाई प्राप्त परन्तु अनाज्ञाकारी कोढ़ी था जिसने सबसे पहले यीशु को गलील में परिचित कराया। अब घटनाओं की यह डोरी उस पर निन्दा का दोष लगाती है (2:7), जिन लोगों के साथ वह रहता था उनकी आलोचना (2:16), उसके उपवास न करने की शिकायत (2:18), सब्त को तोड़ने का एक आरोप (2:24) भी इससे जुड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त वहां

यीशु के प्रति घृणा (3:2) तथा उसे नाश करने का षड्यंत्र भी पाया जाता था (3: 6)।

हम देखते हैं कि **एक उद्धारकर्त्ता की उसके क्षमा करने के अधिकार पर आलोचना की गई**। सांसारिक व्यक्ति यीशु के निश्चित दावों को पसंद नहीं करते हैं। चंगाई का एक चमत्कार होता है (2:1-5)। एक लकवे के रोगी को उसके पास लाया गया और यीशु तक पहुंचना इतना कठिन था कि उस व्यक्ति को यीशु तक पहुंचाने के लिए उन्हें छत को तोड़ना पड़ा। **उनके** विश्वास के कारण यीशु ने उन्हें आशीष दी। जब एक बीमार व्यक्ति को चंगाई के लिए लाया जाता है तो किसे विश्वास करना चाहिए, किसी को भी! यह प्रार्थना करने वाला व्यक्ति हो सकता है। यह बीमार व्यक्ति हो सकता है। परन्तु यह बीमार व्यक्ति के मित्र भी हो सकते हैं।

यीशु बिमारी के बारे में ज़्यादा नहीं कहता है। इसके बजाए वह कहता है, **'तेरे पाप क्षमा किये गए हैं।'** स्पष्ट रूप से बीमार व्यक्ति अपनी बिमारी की अपेक्षा अपने पापों के लिए चिन्तित था! अधिकांश लोग अपने पापों की अपेक्षा अपने रोगों के प्रति अधिक चिन्तित रहते हैं, परन्तु इस व्यक्ति को अपने पापों की अधिक चिन्ता थी। संभवत :उसकी बिमारी उसके पाप का परिणाम थी। ऐसा हो सकता है, यद्यपि यह सोचना गलत है कि **सभी** बिमारियाँ पाप का परिणाम है।

परन्तु इस दशा में मरकुस के सुसमाचार का प्रमुख केन्द्र वह तरीका है जिसमें यीशु के निरीक्षकों ने उसके शब्दों द्वारा अपराध किया। इन दावों का स्रोत क्या है? यीशु इस तरह से कार्य कर रहा है कि मानों वह परमेश्वर है! वह नहीं कहता, ''मैं आशा करता हूँ कि परमेश्वर तुझे क्षमा कर देगा। वह एक निश्चित कथन देता है (**'तेरे पाप क्षमा किये गए हैं'**), मानों कि वह वो है जो क्षमा कर रहा है (2:6-7)।

यीशु स्वयं आलोचकों की समीक्षा करता है *'वे अपने अपने मन में ऐसा विचार कर रहें है'*। वहां पर इस तरह की निश्चित रूप से एक आलोचक आत्मा है जो आलोचना करने के लिए इस तरह के तर्कों तथा विवादों का प्रयोग करती है। वे अपने मनों में यीशु की आलोचना करने का तरीका ढूंढ रहे हैं। इस तरह से विचार करने का क्या अर्थ है? क्या हमें परमेश्वर के कार्यों की आलोचना करने के लिए अपने मनों का प्रयोग करना है?

यीशु जानता था कि उनके मनों में क्या चल रहा है। चूंकि वह परमेश्वर है क्या इसी कारण उसको यह ज्ञात था। या यह वह ज्ञान है जो आत्मिक बुद्धि द्वारा आता है? मेंरे विचार से यह बाद वाला है। यह विशुद्ध आत्मिक प्रवृत्ति है जो पवित्रात्मा द्वारा ज्योतिर्मय होती है। कई बार हम सरलता से अपनी आत्माओं में जान जातें हैं कि दूसरे व्यक्ति के जीवन में क्या घट रहा है। बेशक हमें संदेह होने से बचना है। संदेही होना एक बुरी चीज़ है। परन्तु कई बार संदेही आत्मा के बिना ही हमें इस बात का ज्ञान हो जाता है कि दूसरे व्यक्ति के मन में क्या चल रहा है। यीशु एक चमत्कार करता है। यह उस सुगमता का उदाहरण देता है जिसके द्वारा यीशु चंगा कर सकता है तथा उस सुगमता का जिसके द्वारा यीशु क्षमा कर सकता है।

हम एक उद्धारकर्त्ता की आलोचना पापियों के साथ उसके मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखने के कारण होते देखते हैं। इसके बाद लेवी को यीशु का अनुयायी बनने के लिए बुलाया जाता है (2:13-17)। यह एक अचानक होने वाला वार्तालाप है। यीशु कफरनहूम से निकल कर गलील के समुद्रतट के निकट आया। वहां वह भीड़ को परमेश्वर के राज्य की शिक्षा देता है(2:13)। वह 'पुन:' चला जाता है; उसने पहले भी ऐसा किया है (1:38)। यीशु कफरनहूम को अपने आधार के रूप में प्रयोग कर रहा है, उसके आस-पास के क्षेत्रों में छोटे मिशन को पूरा करते हुए। वहां से गुज़रते हुए वह उनमें से एक को जो कि लेवी है, चुंगी लेने के स्थान पर बैठा हुआ देखता है (2:14)। पुन: एक बार (जैसा 1:16 और 1:19 में है) किसी को पूर्ण समय की सेवकाई में इस तरह से बुलाता है कि व्यक्ति तत्काल ही अपने चालू व्यवसाय को छोड़कर चलने के लिए तैयार हो जाता है। लेवी उसी क्षण यीशु की बुलाहट का जवाब देता है (2:14)।

यह घटना शीघ्र ही यीशु को उन लोगों के पास ले जाने का नेतृत्व करती है जिनमें से अधिकांश चुंगी लेने वाले तथा पापी हैं, ये वे लोग हैं जो उन दिनों के धार्मिक अगुवों के नियमों के प्रति लापरवाह थे (2:15)। वह अपने चारों ओर अनुयायियों के एक ऐसे समूह का एक चित्रित रहा है, जो उसकी सुनने के लिए उसके साथ वहां यात्रा करें जहां वह जा रहा हो तथा उसके द्वारा प्रशिक्षित किये जाएं।

यीशु उन साधारण लोगों को आकर्षित करता है जिनमें से बहुत कम का ही धार्मिक और राजनैतिक अगुवों के अत्यंत सुशिष्ट समुदाय से किसी तरह का कोई सबंन्ध है। इससे उन फरीसियों को आघात पहुंचा (2:16) जिनका मानना है कि एक धार्मिक अगुवे को इस तरह के लोगों के साथ मेल-जोल नहीं रखना चाहिए।

यीशु उन्हें जवाब देने के लिए तैयार था (2:17)। वह सोच-समझकर इस तरह के ज़रूरतमन्द लोगों के प्रति केन्द्रित है। ये वे लोग हैं जिन्हें उसकी सहायता की आवश्यकता है।

यह कुछ अचरज में डालनेवाला है कि धार्मिक लोग परमेश्वर के मेत्रीपूर्ण (स्नेही) होने को पसंद नहीं करते हैं। परमेश्वर की लोगों के दायरे को तोड़ने तथा नए मित्र बनाने की आदत है, और वे प्राय: बहुत ही बुरी प्रवृत्ति के लोग होते हैं! तब पुराने आदरणीय लोग जो समूहों से आते हैं जो संभवत: कुछ शताब्दी पूर्व परमेश्वर द्वारा आशीषित किय गए थे, दोषी बन जाते हैं। यीशु को उन चुंगी लेनेवालों की ओर से विरोध का सामना नहीं करना पड़ा जो लोगों से जितना अधिक हो सके धन ऐंठते हैं। यीशु को पापियों की ओर से विरोध नहीं मिला जो उन धार्मिक कर्तव्यों की अवहेलना कर देते हैं जिन्हें करना फरीसी और शास्त्री सबसे अधिक पसंद करते हैं। यीशु को उन लोगों की ओर से विरोध का सामना करना पड़ा जो यह कहते थे कि वे परमेश्वर के लोग हैं और मसीह के आने की प्रतीक्षा में हैं!

बिना किसी ढोंग या आत्मा-केन्द्रित कृत्रिमता के जिसे धार्मिक लोगों में सामान्यता देखा जाता है, यीशु एक स्नेही उद्धारकर्त्ता है। वह महान मित्रता के साथ महान अधिकार को जोड़ता है। परमेश्वर का पुत्र होने पर भी वह स्वयं के लिए दीन चित्रण का प्रयोग करता है। वह एक स्नेही उद्धारकर्त्ता है-और वह अभी भी वही है।

अध्याय 5

परमेश्वर के राज्य में अनुग्रह
(मरकुस 2:18-3:6)

ये पद लगातार यीशु के विरूद्ध उठनेवाले विरोध के बारे में बताते हैं। उपवास के बारे में प्रश्न का जवाब दिया गया है (2:18-22), शिष्यों ने सब्त के दिन अनाज के दानों को तोड़ा (2:23-28) और यीशु सब्त के दिन एक मनुष्य को चंगा करता है (3: 1-6)।

प्राचीन लेखक इतने परेशान नहीं थे जितना कि हम कालक्रमानुसार अनुक्रम में पाते हैं, तौभी विश्वास करने का एक कारण है कि मरकुस सामान्यता घटनाओं को क्रम में बताता है। केवल यह ही है जो कालक्रमानुसार में 24 घन्टे की अवधि की घटनाओं को बताता है (मरकुस 1:21-39 में)। और यदि, जैसा मेरा मानना है, मरकुस 2:1-3:6 विरोध **उठने** की कहानी के बारे में बताता है, तब कहानियाँ या तो क्रम में होनी चाहिएं या फिर उसी समय के लगभग की घटनाओं की डोरी में होनी चाहिएं।

1. **यह स्पष्ट हो रहा था कि यीशु की सेवकाई परमेश्वर के राज्य में एक नया कदम था।** उपवास के बारे में प्रश्न (2:18-22) इसलिए उठा क्योंकि यह

स्पष्ट हो रहा था कि यीशु के शिष्य एक पृथक समूह के थे। यीशु के लिये उपवास रखना अच्छा था (देखें मत्ती 6:16), परन्तु यह कठोर नियम नहीं था। लोग हैरान थे कि यीशु के शिष्य उपवास **नहीं** रखते थे। यूहन्ना के शिष्य नियमित रूप से उपवास रखते थे। और फरीसी-उनमें से अधिकांश लोग उद्धार पाए नहीं थे- नियमित रूप से उपवास रखते थे। इस समय पर यीशु के शिष्य किसी भी तरह का उपवास नहीं रखते थे। जिससे प्रश्न उत्पन्न हुआ।

'उन्होंने आकर' (2:18) एक अस्पष्ट वाक्यांश है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग सामान्य रूप में उपवास के बारे में प्रश्न कर रहे थे। यीशु के लिए उपवास रखना, विशेष अवसर और विशेष संकट से जुड़ा था। आनन्द के समयों में कोई भी उपवास नहीं रखता और उसने अपनी सेवकाई को एक **आनन्द** के समय के रूप में देखा। जब दुल्हा विवाह के अवसर पर अपने मित्रों के साथ है, तो यह उत्सव मनाने का समय है। उसके घनिष्ठ मित्र दुल्हे को सहयोग देने में व्यस्त हैं और उन्हें भोजन की आवश्यकता है (2:19)! यीशु ने अपनी सेवकाई को इसी तरह से देखा। यह उत्सव का समय था। परमेश्वर का राज्य यीशु में होकर आया था। शुभ संदेश को फैलाने के लिए बहुत कुछ किया जाता था। यह उपवास करने का समय नहीं था। एक दिन, यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान के पश्चात्, *'दुल्हे को उनसे अलग किये जाने के बाद'* कलीसिया की कहानी में कठिन समय होंगे; तब उन्हें उपवास करने की आवश्यकता होगी (2:20)।

उस क्षण, यीशु यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले तथा फरीसियों के अनुसार नहीं कर रहा था। 'यीशु-आन्दोलन' जो इस्राएल में आ रहा था, वह केवल यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले या फरीसियों की पुरानी सेवकाई पर कोई नया पैबन्द ही नहीं था, यह परमेश्वर के राज्य में एक नया आन्दोलन था, और यीशु कुछ नई चीज़ें कर रहा था (2:21) *'दाख का नया रस नई मशकों में भरा जाता है'* (2:22)। परमेश्वर के राज्य में नयें आन्दोलन के लिए नए ढांचे की आवश्यकता होती है।

2. **परमेश्वर का नया राज्य विधिवादिता की तुलना में अधिक अनुग्रहकारी था** (2:23-28)। अगली घटना यीशु की सेवकाई की आरम्भिक दशा में

हुई होगी। मरकुस दिखाता है कि घटनाओं की एक शृंखला के द्वारा विरोध कैसे उठा: कहानियों को कालक्रमानुसार अनुक्रम में काम चलाऊ ढंग से बताया गया है।

शनिवार, सब्त के दिन कुछ घटित होता है। यीशु और उसके शिष्य साथ-साथ चल रहे हैं। यह एक छोटी सैर से अधिक नहीं था, क्योंकि व्यवस्था के द्वारा 'सब्त के दिन की यात्रा' से अधिक यात्रा करने की मनाही थी। और यीशु अधिक दूर तक जाने का दोषी नहीं था। वे साथ-साथ चलते हुए बालें तोड़कर खा रहे थें। कुछ फरीसी निकट ही थे (शायद यह यहूदी सभा घर से निकट हुआ, जहां यीशु तथा उसके शिष्य आराधना के लिए गए थे)। उन्होंने शिकायत की कि यीशु सब्त के दिन कार्य कर रहा है!

यीशु यह कह सका कि वह पुराने नियम की आवश्यकता को नहीं तोड़ रहा था, परन्तु केवल **अतिरिक्त** परम्परा को! उसने वास्तव में क्या किया, इसका उल्लेख उस कहानी में मिलता है जहां दाऊद ने कुछ ऐसा किया जो वर्जित था ! वास्तव में वह व्यवस्था को नहीं तोड़ रहा था, उसने कहा कि यदि उसने ऐसा किया तो बहुत बड़ा विषय नहीं है! दाऊद ने नोब में भेंट चढ़ाई हुई रोटियों द्वारा स्वयं की सहायता करते हुए अवैध ानिक कार्य किया (देखें 1 शमूएल 12:1-6)। धार्मिक व्यवस्था को आवश्यकतानुसार तोड़ा जा सकता है।

यीशु ने कहा: *'सब्त का दिन मनुष्य के लिए बनाया गया है।'* पुराने नियम के सब्त-नियम को किसी भी तरह से लेना जो कि इसे एक विकृत सीमित नियम बनाता है, पुराने नियम की व्यवस्था के प्रमुख बिन्दु से चूक जाना है। परमेश्वर की व्यवस्था लाभकारी थी; यह निष्ठुर रूप से इतनी कठोर नहीं थी कि शनिवार के दिन एक सैर या जलपान पर पाबंदी लगाए। कर्मकाण्डवादी अजीब चीज़ें करते हैं। वे परमेश्वर की व्यवस्था को लेते हैं, इसमें कुछ जोड़ते हैं, और तब इस तरह से कहते हैं, कि आप एक अनाज के दाने को भी नहीं चबा सकते हैं! परमेश्वर का राज्य इस तरह का नहीं हैं, यद्यपि कुछ इसे इस तरह का बना देते हैं!

यीशु ने व्यवस्था को माना, परन्तु उसमें कभी भी कुछ नहीं जोड़ा और

जल्द ही क्रूस पर उसकी मुत्यु सब्त से छुटकारा प्रदान करनेवाली थी।

पद 28 में यीशु वार्त्तालाप को पुन: निर्देशित करते हुए स्वयं की ओर संकेत करता है। वह *'मनुष्य का पुत्र'* है। इस वाक्यांश का अर्थ केवल एक मनुष्य होना हो सकता है। सब्त मनुष्य के लिए है और यीशु मनुष्य है! तौभी उसी समय में उनके लिए जिनके सुनने के कान हैं, *''मनुष्य का पुत्र''* दानिय्येल के 7:13 में उल्लेख किया गया शीर्षक मसीह है। सब्त की व्यवस्था उसकी व्यवस्था है! यदि वह चाहे तो इसका अपमान कर सकता है! उसका राज्य शीघ्र आएगा और इस तरह की चीज़ों को दूर कर देगा। फरीसी व्यवस्था के बारे में बात करना चाहते थे; यीशु चाहता था कि वे उसे मसीह के रूप में मानें वह वास्तव में मूसा की व्यवस्था को नहीं तोड़ रहा था, परन्तु यदि वह चाहता तो वह इसका अन्त कर सकता था। वह मूसा की व्यवस्था का प्रभु है। वह स्वयं के साथ सब्त का प्रतिस्थापन करने के अधिकार का दावा करता है!

यीशु की मृत्यु और पिन्तेकुस्त के पश्चात् मसीही व्यवस्था की अधीनता से मुक्त किये गए हैं तथा यीशु के अधीन लाए गए हैं। यीशु ने हमारे लिए मूसा की व्यवस्था को पूरा किया, और तत्पश्चात् वह हमें व्यवस्था के अधीन नहीं परन्तु अपने अधीन रखता है।

3. **यीशु ने यह स्पष्ट किया है कि धर्म क्रूर है परन्तु अनुग्रह करुणामयी है** (3:1-6)। एक अन्य अवसर पर सब्त का पालन करना विवाद का विषय था। यह संभवत: यीशु की सेवकाई की अवस्था में ही होना चाहिए। वह सब्त के दिन यहूदी आराधनालय में गया (3:1)। यीशु के शत्रु जानते थे कि वह सदैव रोगियों को चंगा करता है। अत: वे यह देखना चाहते थे कि क्या सब्त के दिन वह किसी रोगी को चंगा करेगा (3:2)। यीशु ने एक व्यक्ति को आगे बुलाया (3:3) और सोच-समझकर इस विषय पर कहा कि सब्त इतना प्रतिबन्धित नहीं है कि परमेश्वर के अनुग्रहकारी और करुणामयी राज्य को आगे जाने से रोके (3:4)! उनके पास इसका कोई जवाब नहीं था, परन्तु वे स्वयं को बदलना नहीं चाहते थे। वह उनकी कठोरता देखकर क्रोधित और दुखी था (3:5) और उसने उस मनुष्य को चंगा किया।

मरकुस 3:6 वह बिन्दु है जहां मरकुस हमें ले जा रहा है। फरीसियों ने यीशु की हत्या करने के लिए हेरोदियों के साथ षड्यंत्र करना आरम्भ किया। हेरोदियों को मूसा की व्यवस्था की कोई परवाह नहीं थी। वे रोमी शासन के समर्थक थे। परन्तु परम्परा को तोड़ने ने फरीसियों को इतना अपराधी बना दिया कि उन्हें इस बात की भी परवाह नहीं थी कि वे किसके साथ जुड़े थे, वे तो केवल यीशु से छुटकारा पाना चाहते थे। धर्म-मूर्ख, अंधा और यहां तक कि हत्यारा है। यीशु करुणामयी, दयालु तथा अनुग्रह से पूर्ण है।

अध्याय 6

शिष्यों का एक परिवार
(मरकुस 3:7-35)

विरोध के पश्चात् यीशु को एक उच्च विषय पर आना था, यीशु कुछ समय के लिए शिष्यों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए वहां से हट गया।

1. **सेवकाई में समस्या के बढ़ने पर यीशु ने अपना ध्यान शिष्यों को प्रशिक्षित करने की ओर लगाया।** यीशु की एक स्थिर सेवकाई नहीं थी। वह कलीसिया में एक ऐसे पास्टर और प्रचारक के समान नहीं था जो एक विशिष्ट क्षेत्र में मण्डली का आरम्भ करने जा रहा हो। उसका केन्द्र इस्राएल देश पर है। वह शिष्यों के एक देशव्यापी आन्दोलन का आरम्भ करता है।

   अपने विरुद्ध उठनेवाले विरोध के कारण यीशु गलील सागर के कुछ भागों से चला गया (3:7)। पूरे देश से एक बड़ी भीड़ अब उसके पीछे चल रही थी (3:7-8)। उसे एक नाव में बैठकर उपदेश देना पड़ा जिससे कि भीड़ उसे दबा न सके (3:9)। उसने सैकड़ों लोगों को चंगा किया और लोगों की भीड़ अपने शरीरों में चंगाई प्राप्त करना चाहती थी, इसके अतिरिक्त भीड़ कों और

कुछ नहीं चाहिए था। (3:10)। दुष्टात्माएं भी यीशु के अधिकार को स्वीकार करती थीं (3:11)-परन्तु यीशु उनके द्वारा किसी भी तरह का नि:शुल्क विज्ञापन कराना नहीं चाहता था (3:12)!

यह समय यीशु के लिए उन शिष्यों को नियुक्त करने का था जो पूरे संसार में उसकी सेवकाई को आगे बढ़ाने वाले बन सकें। यीशु का एक विशाल दर्शन था। वह केवल एक छोटी मछली की ओर नहीं देखता था; उसका लक्ष्य था कि संपूर्ण विश्व परमेश्वर के राज्य के बारे में सुने।

अत: एक बड़ी भीड़ यीशु की सेवकाई की नई अवस्था को परिचित कराने के लिए उसके पीछे चल रही थी वह पहाड़ियों पर जाकर के अपने कुछ चेलों को अपने साथ रहने के लिए कहता है (3:13)। वह उनमें से बारह का चुनाव कर उन्हें एक विशेष नाम देता है, 'प्रेरित'। संभव है कि उसने इब्रानी शब्द '**शेलिएच**' का प्रयोग किया है जिसका अर्थ हो 'प्रेरित' या 'विशेष रूप से भेजा गया व्यक्ति।'

2. **यीशु के मन में उनके लिए प्रशिक्षण का एक कार्यक्रम था।** सर्वप्रथम उन्हें उसके साथ समय व्यतीत करना था (3:14)। यह उन्हें यीशु को कार्य करते हुए देखने के योग्य करेगा तथा इसके भी कि वह चीज़ों को कैसे करता है। प्रेरितों को यीशु की सेवकाई को बढ़ाने वाला बनना था। वे वही करेंगे जो वह कह रहा था।

   यह देखने के द्वारा कि यीशु कैसे चीज़ों को करता है कुछ व्यवहारिक अनुभव लेने और उसकी शिक्षाओं और उसकी विधियों को सीखने के पश्चात् वह उन्हें अपनी कलीसिया का विस्तार करने के लिए भेजता है (3:14-15)। मरकुस हमें इससे जुड़े लोगों के नाम बताता है (3:16-19)।

3. **यीशु वास्तव में एक नये तरह के परिवार में लेकर आ रहा है।** उसके पार्थिव परिवार ने उसके बारे में सोचा कि उसका चित्त ठिकाने नहीं है (3:20-21)। जिन लोगों से यीशु का समर्थन करने की अपेक्षा की जानी चाहिए, वे ही उसे बुरी तरह से नीचा कर रहे थे। उसका अपना परिवार ही उसकी प्रशंसा करने में असमर्थ था।

कोई सोच सकता है कि शिक्षित दर्शनशास्त्री ही परमेश्वर के पुत्र की खड़े होकर प्रशंसा करने के योग्य हैं, परन्तु '*व्यवस्था के शिक्षक*'-यरूशलेम

के निपुण दर्शनशास्त्रियो' ने कहा कि उसमें शैतान है (3:22-30)। उन्होंने कहा कि वह बालजबूल-शैतान, की सहायता से ही आश्चर्यकर्म करता है।

यीशु ने अपने पर लगाए अभियोग का सरलता से जवाब दिया। कोई भी चीज़ जो शैतान के राज्य का नाश करे, वह शैतान की ओर से नहीं हो सकती (3:23-26)। यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और '*आत्माओं को परखने*' में हमारी सहायता करता है। जब शैतान के राज्य पर आक्रमण होता है और लोग धार्मिकता की ओर आते हैं, तब यह परमेश्वर का आत्मा ही है जो कार्य करता है।

वास्तव में यीशु शैतान को 'बांध' रहे हैं। यीशु चित्र भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। एक बलवान और शक्तिशाली व्यक्ति के पास एक घर है जिसमें वह कई कैदियों को रखता है। छुड़ानेवाले घर पर आक्रमण कर वहां पर रहने वाले कैदियों को छुड़ाना चाहते हैं, परन्तु घर एक किले के समान है। इसके अन्दर जाकर कैदियों को छुड़ाना सरल नहीं है। शक्तिशाली अधिकारी द्वारा इस पर पहरा दिया जा रहा है। वह एक बलवान और शक्तिशाली व्यक्ति है।

वे क्या करेंगे? सर्वप्रथम वे उस शक्तिशाली व्यक्ति के घर पर आक्रमण कर उस पर अपना नियंत्रण कर लेंगे। वे उसे बांध देंगे ताकि वह लोगों को वहां से मुक्त करने में बाधक न बने। और उसके बाद वे अपने मार्ग की बाधओं को तोड़कर कैदियों को मुक्त कर देंगे।

यह एक दृष्टांत है। शैतान गृहस्थ है। उसके पास कई बंधक हैं। यीशु परमेश्वर का आज्ञाकारी पुत्र होने के नाते कैदियों को शैतान के प्रभुत्व से मुक्त कराने के लिए अपने अधिकार का प्रयोग कर रहा है।

यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि कैदी केवल तब ही बाहर निकल सकते हैं जबकि 'बलवान व्यक्ति' को बांध दिया गया हो। यीशु स्वतन्त्रतापूर्वक इस कार्य को इस कारण से कर पाता है क्योंकि उसने शैतान को **पहले से** ही हरा दिया है। यीशु को पवित्र आत्मा द्वारा समर्थ किया गया है (1:10), और शैतान ने यीशु से पाप कराने का प्रयास किया परन्तु असफल रहा (मरकुस 1:13)। यीशु बंधकों को शैतान की कैद से छुड़ाने में समर्थ है क्योंकि उसने पहले से ही उसे बांध दिया है। यीशु को यरूशलेम के शास्त्रियों की ओर से एक और चेतावनी का शब्द मिला। उस समय पर यीशु का विमर्श-पूर्वक

सामना करना के लिए जब कि वह बड़ी शक्ति के साथ सेवकाई कर रहा है, अक्षम्य (3:28-30)। यह अक्षम्य है, क्योंकि यीशु ही क्षमा प्राप्त करने का मार्ग है। जानबूझकर यीशु को अस्वीकृत करना उद्धार के मार्ग को अस्वीकृत करना और सदा के लिए भटक जाना है। इस पर ध्यान देना चाहिए कि 'अक्षम्य पाप' केवल अविश्वासियों द्वारा ही किया जाता है। यह यीशु को उसकी शक्ति के साथ अस्वीकार करने का पाप है। कोई भी मसीह '*पवित्रात्मा के विरुद्ध निन्दा*' करने का दोषी नहीं है।

मरकुस के सुसमाचार के इस प्रवाह में इन कहानियों का महत्वपूर्ण विषय है कि यीशु एक नये परिवार की रचना कर रहा है। धार्मिक अगुवे उसे अस्वीकृत कर देते हैं। उसका परिवार सोचता है कि उसका चित्त ठिकाने पर नही। इसलिए उसे एक नये परिवार की ज़रूरत है और यह उसके अनुयायियों में विद्यमान है।

यीशु का पार्थिव परिवार यीशु को उस सब से दूर ले जाने का प्रयास करता है जो वह कर रहा है। वे बाहर खड़े हुए भीतर आने से इन्कार करते हैं और चाहते हैं कि वह बाहर आए (3:31-32)। परन्तु यीशु इस अवसर का चुनाव यह बताने के लिए करता है कि वे जो 'अन्दर' आए हैं और उसकी शिक्षाओं को सुनने में शामिल हैं, वे उसके पार्थिक परिवार की तुलना में उसके साथ अधिक घनिष्ठ संबन्ध में हैं। यीशु के साथ संबन्ध यीशु की इच्छा को पूरा करने से बनता है (3:35)। उसके अनुयायी उसका परिवार हैं।

यहां एक ऐसे समय पर परमेश्वर के राज्य का निर्माण करने का नमूना है जब कि यह विरोध का सामना कर रहा है। संसार भर में घोषणा करना (मरकुस 1:21-3:6) सहभागिता के निर्माण के साथ जुड़ा हुआ है। शैतान को बांधने का यीशु का तरीका यीशु की अपनी आज्ञाकारिता है, और शिष्यों के एक ऐसे परिवार को लाना जो संदेश और उसके राज्य का विस्तार करने के लिए तैयार हैं।

अध्याय 7

परमेश्वर के राज्य के दृष्टांत (मरकुस 4:1-20)

इस समय में यीशु ने झील के किनारे जाकर दृष्टांतों में संकेन्द्रित शिक्षा को देना आरम्भ कर दिया। उसने पुन: एक नाव का प्रयोग किया। संभव है कि इससे पूर्व (3:9-10) नाव का प्रयोग यीशु को समुद्र से बाहर ले जाने के लिए किया गया था, जब उसे विश्राम करने की आवश्यकता थी। अब वह इसका प्रयोग एक ऐसे मंच के रूप में करता है जहां से वह बोल सके। संभवत: यह एक विशाल नाव होगी; और यीशु की एक असाधारण रूप में मज़बूत आवाज़ होगी। वह नाव में बैठकर लोगों से दृष्टांतों में बातें करने लगा (4:1-2)।

'दृष्टांत' एक इस तरह की शिक्षा होती है जिसमें सीधे रूप से नहीं कहा जाता है। इनमें वे कहानियां आती हैं जिनमें उदाहरण, रहस्यमयी प्रश्न, किसी भी तरह की पहेलियां, कहावत जो हास्यप्रद या हैरानी में डालने वाली होती हैं, पाए जाते हैं। दृष्टांतों में वे कहावतें आती हैं जो हमारे मनों में कई प्रश्न उठाती हैं। 'दृष्टांत' इसके विपरीत सरल व सीधे रूप से कही जाने वाली शिक्षा है। हमने

बीमारों और वैध (2:17) तथा विवाह के चित्र (2:19 -20) के उदाहरण को देखा और पुराने वस्त्र पर पैवन्द का या मशकों में दाखमधु (2:21-22) के उदाहरण को देखा। यीशु ने उस बलवान व्यक्ति के चित्र का भी प्रयोग किया है जिसे, उसके घर के कैदियों को मुक्त करने से पूर्व, बांधने की आवश्यकता है (3:27-28)।

इस संबन्ध में यीशु का पहला दृष्टांत बहुत महत्वपूर्ण है, बीज बोनेवाले का दृष्टांत (4:3-9)। श्रोताओं का एक बड़ा दायरा / एक बड़ी भीड़ है जिसका वर्णन मरकुस 4:1 में किया गया है। इसके बाद भीतरी लोगों का एक ऐसा समूह है जो परमेश्वर की इच्छा को पूरा करते हैं (जैसा मरकुस 3:35 इसे रखता है)। वे यीशु के आत्मिक परिवार हैं। उन्हें *'बारह तथा उसके चारों ओर रहनेवाले अन्य लोग कहा गया है'* (4:10)।

भीतरी घेरा बारह का है।

मरकुस 4:10-20 उसके सम्मुख आता है जिसे यीशु ने अपने शिष्यों से कहा जब वे उसके साथ एकान्त में थे; मरकुस 4:21-22 उस समय तक जारी रहता है। जो कुछ उसने नाव पर प्रचार के समय में कहा था।

1. **दृष्टांत परमेश्वर के राज्य के बारे में हैं।** परमेश्वर का राज्य' परमेश्वर की ऐसी शक्तिशाली गतिविधि है जिसमें वह एक राजा के समान कार्य करता है। यह एक स्तर या पदवी नहीं है: यह उससे भी कहीं अधिक है। परमेश्वर का राज्य या परमेश्वर का 'शासकीय नियम' स्वयं यीशु द्वारा परमेश्वर का कार्य करना है। यीशु पर भरोसा रखने वाले '*राज्य के वारिस*' हैं। वे अपने जीवनों में परमेश्वर की बचानेवाली प्रभुसत्ता का अनुभव प्राप्त करते हैं।
2. **दृष्टांत राज्य का अनुभव प्राप्त करने का एक निमंत्रण हैं।** यीशु ने कहा, ''*तुम को परमेश्वर के राज्य के भेद की समझ दी गई है*'' (4:11)। यह कुछ अजीब भाषा है। हमारे अनुसार यीशु को इस तरह से कहना चाहिए, ''तुम पर भेद को **प्रगट** किया गया है---'' परन्तु इस तरह से कहना कुछ भिन्न होगा।

मरकुस के अनुसार 'राज्य' यीशु की शिक्षा का प्रमुख विषय था। यीशु

राजा है। जब यीशु आता है तो परमेश्वर का राजा आता है और यदि परमेश्वर का राजा आता है तो हम परमेश्वर के राजकीय शक्ति के साथ कार्य करने की अपेक्षा कर सकते हैं।

परन्तु हमें दिये जाने पर भी 'राज्य' एक छिपा भेद है। कल्पना करें कि मैं आपको एक बन्द लिफाफा देता हूँ। मैंने इसे आपके सिवाय और किसी को नहीं दिया है। लिफाफे के भीतर कुछ मूल्यवान वस्तु है। परन्तु लिफाफा बन्द है! आपको कुछ दिया गया है। परन्तु इसमें क्या है यह जानने के लिए आपको इसे खोलना है। यीशु का कहना है कि उसने अपने शिष्यों को कुछ ऐसा दिया है जो दूसरों के पास नहीं है, परन्तु उसमें अभी एक 'रहस्य' एक 'भेद' है। इसी कारण '*उन्हें सुनने पर ध्यान देना*' है (देखें 4:9)। उन्हें दूसरों से अलग भेद दिया गया है परन्तु उन्हें अभी यह पहचान करनी है कि यह क्या है। राजा की वाणी का अनुभव लेने पर वे राज्य का अनुभव प्राप्त करते हैं । उन्हें इस पर ध्यान देना है कि वे इसे कैसे सुनते हैं।

3. **दृष्टांत उद्धार पाए तथा भटके हुए के बीच के अन्तर को प्रगट करते हैं।** लोग प्रशंसा तथा अंधेपन के मिश्रण होते हैं। यीशु के विख्यात होने पर भी बहुतों ने स्वयं को उसके प्रति समर्पित नहीं किया। वे यीशु की सराहना करते हैं। वह लोगों को चंगा करता है। कौन इस बारे में शिकायत कर सकता है? परन्तु चंगाई का मुख्य- विषय बिन्दु परमेश्वर के राज्य के निकट ध्यानकेन्द्रित करना है। यह परमेश्वर के वचन को ग्रहण करने का एक राज्य तथा एक धार्मिकता का राज्य और परमेश्वर के साथ प्रेमी संबन्ध होना है। लोग जानते हैं कि यीशु चंगा करता है परन्तु वे पूर्ण रूप से उसके राज्य की सराहना नहीं करते हैं।

   यीशु ने अपनी शिक्षाओं को दृष्टान्तों का रूप देने का चुनाव किया है। उसने स्पष्ट रूप से सिखाया कि राज्य आ रहा है (1:14-15)। उसने यहूदी आराधनालय में सिखाया और लोगों को पापों की क्षमा के बारे में बताया (2:5, 5-11)।

   झील पर यीशु के साथ एक बड़ी भीड़ थी (4:1-2), और उसने इस तरह की अप्रत्यक्ष शिक्षा का प्रयोग करने का चुनाव किया। 'वह उन्हें दृष्टांतों

   में उसने झील के किनारे पर शिक्षा, दी (2:13)। सिखाने लगा (4:2 अ)। सबसे महत्वपूर्ण दृष्टांत बीज बोने वाले का था (4:2ब-8)। तब उसने कहा, ''जिसके पास सुनने के लिए कान हों वह सुन ले'' (4:9)। दृष्टांत भीड़ को बिना किसी व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण के दिया गया था।

4. **दृष्टांत एक दण्ड हैं**। इस विषय-बिन्दु की (4:11-12 में) प्राय: सराहना नहीं की जाती है। यीशु की शिक्षाओं को जितना अधिक सराहा गया है उतना ही अधिक उन्हें अस्वीकृत भी किया गया है। उसका जीवन समाप्त करने का षड्यन्त्र किया गया (3:6)। कुछ ने उन शक्तिशाली चमत्कारों को अस्वीकृत करने के द्वारा जो यीशु की प्रामाणिकता को प्रगट करते हैं, पवित्रात्मा की निन्दा की है (3:22-30)।

अत: दृष्टांत उसके शिष्यों के लिए सहायक हैं परन्तु, दूसरों को इसलिए दिए गए हैं कि वे आगे को परमेश्वर के वचनों से आशीष पाने से बचें। दृष्टांत समझ को रोकते हैं क्योंकि वे जटिल होते हैं। कुछ के लिए वे एक आशीष है। जबकि अन्यों के लिए वे एक न्याय हैं। कुछ के लिए दृष्टांत समझ के मार्ग में आने वाली बाधा हैं।

दृष्टांत प्रगट करते हैं कि कुछ लोग परमेश्वर की चीज़ों को देखने के योग्य हैं परन्तु अन्य नहीं हैं। दृष्टांत यीशु की शिक्षाओं को सरल बनाने वाले उदाहरण नहीं हैं। बजाय इसके, वे अप्रत्यक्ष शिक्षाएं हैं जो कुछ लोगों का न्याय करते हैं परन्तु अन्यों पर करुणा करते हैं।

कुछ लोग यीशु की शिक्षाओं के विषय-बिन्दु को नहीं देखते हैं। यह उनके मनों से बात नहीं करती है। यह उनका जीवन नहीं बदलती और उन्हें नये लोग नहीं बनाती है। शिक्षा उन तक आती है। वे इसे नहीं देखते हैं। वे अपने कानों से इसे सुन कर भी इसे नहीं सुनते हैं। परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक समान कार्य नहीं करता है। यह एक रहस्यमयी विषय है और मैं इसे समझने का कष्ट नहीं करता हूं। तौभी इसमें संदेह नहीं कि परमेश्वर अपनी बचाने वाली क्रान्तिकारी सामर्थ की समझ कुछ लोगों को देता है, परन्तु अन्यों को नहीं।

बीज बोनेवाले के दृष्टांत का सबसे प्रमुख-बिन्दु है कि राज्य प्रभावशाली होने के प्रतिवर्ती स्तर पर है।

कुछ कठिनाई से यीशु के बचाने वाले राजकीय सामर्थ के संदेश को सुनते हैं (4:15)।

अन्य यीशु के राजकीय सामर्थ के संदेश को सुनते हैं और वे उत्साही हैं, परन्तु विषय पर उनकी गहन धारणा नहीं होती और उनका उत्साह जल्द ही मिट जाता है। यह सच्चा विश्वास नहीं था । वचन ने जड़ नहीं पकड़ी। परमेश्वर के वचन के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है (4:16-17)। विरोध का पहला रूप उनकी अवास्तविकता को प्रगट करता है।

अन्य संदेश को सुनते हैं और सच में इसे ग्रहण भी करते हैं, परन्तु चिन्ताएं, धन तथा इसी तरह की अन्य चीज़ें उनके जीवन में महान प्रभाव उत्पन्न करने को राज्य में बाधा उत्पन्न करती हैं (4:18-19)। परिणामस्वरूप वे निष्फल रह जाते हैं। परमेश्वर के राज्य की महान शक्ति के होते हुए भी यह विरोधात्मक है, और यह कुछ विश्वासियों के जीवनों में अपने उद्धेश्य को पूरा करने में असफल हो सकता है।

दूसरों के जीवनों में राज्य का संदेश उन लोगों के जीवनों में फलवन्तता को लाता है जो इसे सुनते हैं (4:20)।

सभी के कान नहीं हैं। 'जिसके कान हो वह सुन ले--'!

यहां तक कि वे, जिनके कान हैं, वे भी वास्तव में सुनते नहीं! *जिसके पास सुनने के लिए कान हो वह सुन ले*!

वे जो यीशु के श्रोताओं के बाहरी दायरे में आते हैं उनके आत्मिक कान नहीं होते हैं। भीतरी दायरे को एक भेद दिया गया है। उनके सुनने के कान हैं। भीतरी दायरे को उसे सुनने के लिए दबाव डालना है जो परमेश्वर वास्तव में उन से कह रहा है। उनके कान हैं; उन्हें अब सुनना है। प्रमुख दृष्टांत तथा उन सभी की कुंजी, पहला दृष्टांत है। यदि शिष्य इस दृष्टांत को न समझें तो वे किसी को भी नहीं समझेंगे (4:13)।

कुछ लोगों के पास परमेश्वर का वचन होता है, परंतु उनकी इसमें अधिक रुचि नहीं होती। वचन को उसी समय ले लिया जाता है (4:15)।

कुछ लोगों के पास परमेश्वर का वचन होता है और वे इसे लघु रूप में लेते हैं परन्तु उसे सुरक्षित रख पाने की कमी के कारण परमेश्वर का वचन उनके साथ अधिक भला नहीं कर पाता (4:16-17)।

कुछ वचन को सुनते हैं परन्तु उसके साथ -साथ अन्य चीजें भी आती हैं। (*'चिन्ताए -- धन--अन्य चीज़ों की इच्छा--'*) और परिणाम यह होता है कि वचन उनमें कुछ भी अच्छा नहीं कर पाता है।

केवल वही जो सुनते, ग्रहण करते, तथा परमेश्वर के वचन के प्रति समर्पण को अन्य सभी चीज़ों से ऊपर रखते हैं, वे परमेश्वर के राज्य की आशीषों के अनुभव को प्राप्त करते हैं।

राज्य का संदेश उन लोगों के जीवनों में फलवन्तता को लाता है जो इसे सुनते हैं, सुनकर उसे थामे भी रखते हैं, और कुछ भी अलग नहीं होने देते (4:20)।

अध्याय 8

परमेश्वर के राज्य के प्रति प्रतिक्रिया (मरकुस 4:21-34)

परमेश्वर के राज्य के विविध प्रभाव हैं यहां तक कि यीशु का प्रचार भी सौ प्रतिशत प्रभावी नहीं था।

इस विविध प्रभावशीलता के क्या कारण हैं? परमेश्वर का राज्य एक ऐसा रहस्य है जो बहुतों के लिए सुलभ तो है परन्तु कुछ ही इसे जान पाते हैं। इस के लिए **प्रतिक्रियाशीलता**, **दृढ़ता** और **परमेश्वर के राज्य को प्रथम स्थान पर रखने की आवश्यकता होती है।** मरकुस 4:15 का 'मार्ग' दृढ़ता को नहीं दिखाता है। मरकुस 4:16-17 'पत्थरीला मार्ग' दृढ़ता को नहीं दिखाता है। कटीली भूमि के विश्वासी 4:18-19 दूसरी चीज़ों को अपने जीवनों में प्राथमिकता लेने का अवसर देते हैं। इस दशा में कोई फलवंतता नहीं होती।

1. **राज्य को अन्ततः प्रगट होना है।** अगला युनिट स्वयं में एक दृष्टांत है-दीये का दृष्टांत (4:21-25)। एक दीये को कमरे में रोशनी के लिए रखा जाता है। तथापि

आप दीये को एक अंधेरे कमरे में ले जाकर 'पैमाने' (अनाज को मापने का पात्र) के नीचे नहीं रखते हैं। आप दीये को पलंग के नीचे नहीं रखते हैं। इसी तरह परमेश्वर अपने राजा को राजकीय सामर्थ के साथ इस संसार में इसलिए लाया कि उसे प्रदीप्त कर सके। लोगों की दृष्टि में इसका विकास धीमा हो सकता है, तौभी राज्यका प्रस्ताव निस्कपर रूप से उद्देश्यसहित है, और परमेश्वर के पास उसकी राजकीय सामर्थ के लिए योजना है कि इस संसार के अधंकार के बीच प्रकाश को लेकर आए। प्रत्यक्ष रूप से दिखने वाली राज्य के विकास की गति परमेश्वर की ओर से उसके किसी उद्देश्य को कम नहीं करती। वह राज्य के प्रकाश को बाहर लाकर उसे पलंग के नीचे नहीं छिपाता। इस संसार में अपनी राजकीय सामर्थ को प्रगट करने के लिए उसकी एक योजना है। राज्य की 'धीमी' गति का कारण स्त्री- पुरुषों की कठोरता है, परमेश्वर की ओर से इसमें कोई अपर्याप्तता नहीं होती।

दृष्टांत के साथ कुछ कहावतें आती हैं जो पिछले विषय-बिन्दु को वज़न देती हैं। प्रभु की बचानेवाली प्रभुसत्ता उन आशीषों को देती है जिनकी हम खोज में होते हैं। यह सामान्य 'कुशल-क्षेम' का पूर्णतया प्रतिवर्ती है। मानव समुदाय में हम उन लोगों को देने की ज़रूरत को महसूस करते हैं जो दरिद्र है तथा हम उन लोगों को देने की कोई ज़रूरत नहीं समझते जो धनी होते हैं। वे, जिन्हें परमेश्वर के राज्य की चीजें दी गई हैं और वे उन्हें ग्रहण करते हैं, उन्हें अधिक दिया जाता है, वे जो दरिद्र है, दरिद्रता से प्राप्त करते हैं। धनी (राज्य में)धनी हो जाते हैं और दरिद्र और भी दरिद्र हो जाते हैं। (मैं राज्य की आशीषों को बता रहा हूँ न कि धन को!)

दृष्टांत इस विषय-बिन्दु को बनाता है कि अन्ततः राज्य प्रगट होगा। प्रश्न है: कौन **अब** यीशु के व्यक्तित्व में परमेश्वर की आने वाली राजकीय सामर्थ को ग्रहण करने के योग्य होगा ? यीशु अपनी सेवकाई के बारे में कह रहा है। इस संसार में वह एक दीये या प्रकाश के रूप में आया। परमेश्वर की योजना अपने पुत्र यीशु की रोशनी को किसी पैमाने या पलंग के नीचे छिपाने की नहीं है। वह समय आएगा जब हर कोई देखेगा कि यीशु ही परमेश्वर का राजा है।

तौभी प्रश्न है: कौन परमेश्वर के दीये को ग्रहण करने के योग्य है, कौन यीशु के व्यक्तित्व में परमेश्वर के राजा को देखने के योग्य है? इस विचार को ध्यान में रखते हुए यीशु कहता है, **'चौकस रहो कि क्या सुनते हो'** (4:24)। राज्य के लिए सतर्कता की आवश्यकता है; जितनी अधिक प्रतिक्रिया उतना ही अधिक प्रकाशन दिया जाता है (4:24)। वह व्यक्ति जो प्रतिक्रिया देता तथा परमेश्वर के राज्य के अनुभव में आता है, उसे अधिक दिया जाएगा (4:25ब)। वह व्यक्ति जो राज्य के संदेश पर मन लगाता है परन्तु जो कुछ सुनता है उसे प्राप्त नहीं करता है वह उस उपाधि को भी खोना आरम्भ कर देता है जो उसके पास होती है (4:25 ब)। कोई भी परमेश्वर के राज्य में स्थिर नहीं रहता है। कोई भी या तो पीछे की ओर जा रहा होता है या फिर परमेश्वर की आशीष में बढ़ा रहा होता है।

2. एक आगामी दृष्टांत इस विषय-बिन्दु को बनाता है कि **राज्य विविध प्रतिक्रिया के बावजूद बढ़ेगा** (4:26-29)। एक मनुष्य खेत में बीज बिखेरता है। इसके बाद वह अन्य विषयों पर जाता है। कई बार वह सो रहा होता है। अन्य अवसरों पर वह अपने व्यवसाय के अन्य भागों पर उपस्थित होता है। जब वह ऊपर होकर अन्य दूसरी चीज़ों को कर रहा होता है, बीज धीरे-धीरे बढ़ रहा होता है। किसान अपने बीज की ओर देखता नहीं रहता या बीज को उखाड़कर यह नहीं देखता कि उसमें क्या हो रहा है। यह धीरे-धीरे बढ़ता रहता है। सूर्य और मिट्टी अपना कार्य करते रहेंगे।

   यह एक उत्साह देने वाला दृष्टांत है। पुरुषों और स्त्रियों का परमेश्वर के राज्य को बढ़ाने का उत्तरदायित्व नहीं है। सूर्य की रोशनी और वर्षा तथा मिट्टी के पोषक तत्व विकास को उत्पन्न करेंगे। विकास होगा! विविध प्रगति क्रियाओं के बावजूद राज्य आगे बढ़ेगा। इसका कोई ठहराव नहीं है; परमेश्वर का राज्य आगे जाएगा। किसान कठिन परिश्रम कर सकता है तो भी यह उसका कार्य नहीं है कि सूर्य की रोशनी को चमकाए या वर्षा के पानी को बरसाए। वह बीज में जीवन नहीं डालता है। ये चीज़ें स्वयं होती हैं।

   परमेश्वर की राजकीय सामर्थ को निश्चित रूप से इस संसार के लिए ठहरा दिया गया है। यह कोई इस तरह का प्रश्न नहीं है कि क्या परमेश्वर का राज्य आएगा या नहीं आएगा यह केवल उसके बारे में प्रश्न है जो इसका लाभभोगी होगा। परमेश्वर की राजकीय सामर्थ की परिभाषा राजकीय सामर्थ है! यह हमारे संसार की बात है। राज्य बलवान है; तौभी राज्य दुर्बल है। राज्य प्रतिरोधक है तौभी कोई भी इसे आने से रोक नहीं सकता है। बीज विशिष्ट लोगों के जीवनों में असफल हो सकता है, जिसका कारण मनुष्य की कठोरता और बहरापन है, परन्तु यह असफल नहीं हो सकता।

3. एक आगमी दृष्टांत इस विषय-बिन्दु को बनाता है **कि परमेश्वर का राज्य परिणामों में अन्ततः महान होगा** (4:30-32)। एक छोटे बीज को बोया जाता है। यह बहुत छोटा दिखता है। कोई भी कल्पना नहीं कर सकता कि यही बीज बड़ा होकर एक विशाल वृक्ष बनेगा जिसमें बहुत से पत्ते होंगे। यीशु चाहता था कि उसके प्रेरित इन चीज़ों को थामे। वह अपने शिष्यों के साथ था। उसने उन्हें दृष्टांतों के अर्थ को समझाया (4:33-34)।

परमेश्वर के राज्य का आरम्भ प्रायः छोटी चीज़ों से होता है। एक बढ़ई के पुत्र का जन्म एक छोटे क्षेत्र गलील की भूमि के भूमध्य सागर के पूर्वी सिरे के छोटे क्षेत्र इस्राएल में हुआ। रोम के शक्तिशाली साम्राज्य और यूनान के शक्तिशाली दर्शनशास्त्रों के होते हुए यह कैसा महत्वहीन लगता है। तौभी यह परमेश्वर के राज्य में महान घटनाओं का छोटा आरम्भ हो सकता है।

अध्याय 9

यीशु, सभी का प्रभु

(मरकुस 4:35-5:20)

मरकुस का सुसमाचार यीशु की महानता से होकर एक शिक्षक के रूप में बढ़ता है, ब्रह्माण्ड के प्रभु के रूप में उसकी महानता के साथ। हम दृष्टांतों से (4:1-34) चमत्कारों की ओर बढ़ते हैं। यीशु सृष्टि का प्रभु है (4:35-41), शैतान पर प्रभु (5:1-20), मृत्यु पर (5:21-24, 35-43) और रोगों पर प्रभु है (5:25-34)।

सर्वप्रथम एक ऐसी घटना है **जो यीशु को सृष्टि के प्रभु के रूप में** दिखाती है। यह सांझ का समय है (4:35), अत: यीशु और उसके शिष्य नाव से झील की दूसरी ओर चले। अन्य नावें, भी आई (4:36)। अचानक एक बड़ी आंधी आई जिससे नाव डूबने लगी (4:37); यीशु सो रहा है(4:38)।

शिष्य बुरी प्रतिक्रिया देते हैं। ऐसा लगता है कि वे यीशु पर दोष लगा रहे हैं। संकट की स्थिति आने पर हम स्वयं को आशाहीन अनुभव करते हैं, और ऐसे समय में यह इच्छा करना आसान होता है कि उन पर दोष लगाने लगते हैं। इसका कारण यह है कि हम स्वयं को निराश अनुभव

करते हैं, तौभी हम चाहते हैं कि कोई हमारी सहायता के लिए कुछ करे। अनजाने में हम दोष लगाने का प्रयोग दूसरों को अपने लिए कुछ कराने को दबाव डालने हेतु करते हैं। शिष्यों ने यीशु के साथ ऐसा ही किया (4:38)! परन्तु यह बुरी आदत है जिसे हमें जानना और छोड़ना है।

यीशु ने आंधी (तूफान) को डांटा (4:39) और वह उसी समय थम गई (4:39)। इसके बाद वह उन्हें डांटते हुए कहता है: तुम क्यों डरते हो? (4:40)संकट के बीच इस तरह का दुख विश्वास के प्रतिकूल है। **कायरता यीशु पर एक छोटे तथा संकीर्ण विश्वास को प्रगट करती है।** शिष्यों ने यीशु पर चिन्ता न करने का आरोप लगाया; यह स्पष्ट है कि उन्हें इसका कोई विचार नहीं था कि वह इस बारे में कुछ भी कर सकता है। उन्होंने उसे इस अपेक्षा से नहीं उठाया था कि वह लहरों को शांत कर देगा। उन्होंने उसे इसलिए जगाया था कि वह जान जाए कि उसने उन्हें किस तरह की परीक्षा में डाला था!

उसने उन पर प्रगट किया कि वह महान भरोसा करने के योग्य था। इस चमत्कार ने उन्हें यीशु की महानता को नये रूप में जानने के योग्य किया। कुछ मिनट पहले वह सोया हुआ था। निस्सन्देह उसकी थकान का कारण सेवकाई में उसका कार्य था, एक भारी काम के बाद वह सो गया था। वह जो थकान के कारण सोया हुआ था। वही था जो इस ब्रह्मांण्ड पर शासन करता है। अपनी सामर्थ पर विश्वास करने के द्वारा, वह जानता था कि सृष्टि के किसी भी पक्ष से वह एक शब्द कह सकता है और वह उसका पालन भी करेगी। सोने के लिए वह जितना दुर्बल था, उतना ही लहरों पर शासन करने के लिए वह बलवान था

यीशु सृष्टि का प्रभु है! किसी भी समय वह चाहे तो हवा, वर्षा और तूफान पर नियंत्रण कर सकता है। तौभी, यह वही प्रभु यीशु मसीह है जो दिन भर के कार्य के बाद इतना थक गया था कि वह नाव के पिछली ओर जाकर सोना चाहता था। क्योंकि वह दैविक प्रभु है अत: वह किसी भी आपातकालीन समय का सामना कर सकता है। क्योंकि वह मनुष्य है वह हम से, हमारे संसार से और हमारी आवश्यकताओं से संबन्धित हो सकता है। वह ईश्वरीयता और मानवता, सामर्थ और करुणा का संयोजन है।

अगली घटना **यीशु को शैतान पर विजेता के रूप में दिखाती है।** (5:1-20) वह समुद्र के दूसरी ओर हिप्पोस नामक शहर की ओर आता है। (जिसे गेरेसा भी कहा जाता है-परन्तु यह वह शहर नहीं है जिसका नाम दिकापुलिस है; और मत्ती 8:28-34 में इसे और लूका 8:26-39 *'गिरासेनियों का देश'* कहा गया है, यह झील के उत्तरी पूर्वी किनारे पर है। एक जंगली और भयानक आदमी उसके पास आता है। उसमें दुष्टात्मा से ग्रस्त होने के संभावित चिन्ह हैं। वह मृत्यु से जुड़े एक स्थान पर रहता है (5:3)। उसमें असाधारण बल है; यहाँ तक कि ज़ंजीर उसे वश में नहीं कर पातीं (5:4)। वह कब्रों के चारों ओर चिल्लाता हुआ तथा अपने आपको पत्थरों से घात करता हुआ घूमता रहता है (5:5)। वह जानता था कि यीशु कौन है। जब दुष्टात्माग्रस्त व्यक्ति ने यीशु को देखा तो वह उसी क्षण जान गया। उसने यीशु को मसीह के रूप में स्वीकार किया (5:6-6)। ऊंची आवाज़ में चिल्लाते हुए वह उसे कहता है, ''हे यीशु परमप्रधान परमेश्वर के पुत्र!'' यदि कोई और यीशु के बारे में नहीं जानता, तो शैतान जानता है कि वह कौन है!

यह दुष्टात्मा से पीड़ित होने का एक प्रत्यक्ष मामला है। यीशु आत्मा को उस मनुष्य को छोड़ने की आज्ञा देता है (5:8) और उसके बाद उसका नाम पूछता है। प्रगट रूप से सैकड़ों दुष्टात्माएँ उसमें रह रही थीं (5:9)। यीशु आत्माओं को निकट के सूअरों में चले जाने की आज्ञा देता है। यह इस्राएल के पारम्परिक देश की घटना है और मूसा की व्यवस्था में सूअरों को अशुद्ध जानवर माना गया था। वे परमेश्वर के इस्राएल में रहते हुए सूअरों में नहीं रह सकते थे। दुष्टात्मग्रस्त सूअरों ने स्वयं को नष्ट कर दिया (5:10-13)।

जल्द ही समाचार फैल गया और गिरासेनी भयभीत हो गए (5:14-17)। पुन:स्थापित व्यक्ति यीशु के साथ एक शिष्य तथा प्रशिक्षार्थी के रूप में रहना चाहता था (5:18)। परन्तु उस व्यक्ति को जाकर उन लोगों के लिए गवाह बनने को कहा गया जो दिकापुलिस में रहते हैं, झील के दक्षिण और पूर्व का 'दस शहरों का क्षेत्र' (5:19-20)। मरकुस 1:10-45 में दिये गए निर्देश से यह एक भिन्न निर्देश था, परन्तु तब गदारा में पूर्व सामयिक प्रसिद्धि का खतरा एक समस्या नहीं थी। यह एक अन्यजाति क्षेत्र था तथा आसमयिक प्रसिद्धि का यीशु के लिए कोई खतरा नहीं था। जैसा कि यह कफरनहूम क्षेत्र में आता था।

कहानी प्रगट करती है कि यीशु न केवल मौसम के क्षेत्र में बल्कि दुष्टात्माओं के क्षेत्र में भी अपने अधिकार का प्रयोग करने में समर्थ था, वह आंधी को डांट सका: और वह उसी आसानी से दुष्टात्मा को हटा सका। शिष्यों के लिए यह घटना चेतावनी और प्रोत्साहन के रुप में थी यह जानना कितना प्रोत्साहनजनक था कि यीशु बहुत सी दुष्टात्माओं को आज्ञा दे सका तथा उन पर विजयी भी हो सका।

परन्तु यह एक चेतावनी भी थी। जब यीशु को आना है तो सूअरों को जाना होगा! लोगों को यीशु का स्वागत करने तथा सूअरों की हानि उठाने के बीच एक चुनाव करना था। या उन्हें यीशु को जाने के लिए कहना है जबकि यीशु को उनकी बहुत सी अवैधानिक परन्तु लाभकारी गतिविधियों से उन्हें वंचित करना होगा।

ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि यीशु उनके लिए केवल आशीषें ला सकता है। जिस व्यक्ति को वे जानते थे, उन्होंने उसे सही तरह से कपड़े पहने हुए बैठे तथा उसके चित्त को ठिकाने पर पाया। परन्तु उन्होंने यीशु से अधिक सूअरों को महत्व दिया और यीशु को वहां से चले जाने का निवेदन करने लगे। दुख की बात है कि उन्हें वही मिला जो वह चाहते थे। यीशु उन्हें छोड़कर चला गया और फिर कभी वहां नहीं लौटा। वे अब अपने चारों ओर जितने चाहे सूअर रख सकते थे, परन्तु उन्होंने परमेश्वर के पुत्र की उपस्थिति को खो दिया था।

अध्याय 10

मृत्यु और बीमारी पर प्रभु (मरकुस 5:21-43)

हमने यीशु को सृष्टि पर स्वयं को प्रभु के रूप में प्रगट करते हुए देखा (4:35-41)और शैतान पर एक विजेता के रूप में भी (5:1-20)। अब वह स्वयं को मृत्यु (5:21--24;35-43) और बीमारी (5:25-34) पर प्रभु के रूप में दिखाता है।

5:21-43 की दोनों कहानियाँ एक साथ गुंथी गई हैं। एक कहानी दूसरी के साथ-साथ चलती है। शिष्य झील के पश्चिमी किनारे पर आते हैं (5:21)। आराधनालय का याईर नामक अधिकारी यीशु के सम्मुख अपनी बेटी को चंगा करने की मांग को लेकर आया (5:22-23)। यीशु उसके साथ गया और एक बड़ी भीड़ एक और चमत्कार को देखने के लिए उसके पीछे हो ली (5:24)। जिस समय यीशु, याईर और भीड़ जा रही है, एक स्त्री जिसे लहू बहने का रोग है वह भी उसके पीछे हो ली। जिस तरह से याईर की बेटी बारह वर्ष की थी उसी तरह से उस स्त्री को भी बारह वर्ष से समस्या थी (5:25)। उसने बहुत से चिकित्सकों से दुख उठाया था जो कि उसकी सहायता करने में

असफल रहे थे (5:26)। याईर की तरह उसे भी यह विश्वास है कि यीशु पर थोड़ा सा विश्वास रखने पर ही वह चंगी हो जाएगी (5:27-28)। जैसे ही वह यीशु को छूती है वह चंगी हो जाती है (5:29)। यीशु को कुछ स्वयं में अनुभव होता है (5:30)। और जल्दी ही उस स्त्री को भी स्वयं में कुछ परिवर्तन होने का पता चल जाता है (5:31-33)। परन्तु वह उस स्त्री को पुन:आश्वस्त करने के साथ-साथ उसे ज्ञात कराता है कि अपने विश्वास के कारण ही वह चंगी हुई है (5:34)।

उसी समय समाचार आता है कि याईर की बेटी मर गई है (5:35), परन्तु यीशु याईर के घर जाने की यात्रा पर जारी रहता है, तथा चार लोगों को अपने साथ भीतर आने की अनुमति देता है (5:35-37)। वहां पहुंचकर वह लड़की को मृत पाता है, तौभी यीशु उसकी मृत्यु के बारे में कहता है कि वह 'सोई' हुई है और कि वह शीघ्र ही उठ जाएगी (5:38-40 अ)। वह उसका हाथ पकड़कर उसे उठाता है तथा वह मृतकों में से जी उठती है (5:4.ब-43)।

इन दोनों कहानियों का उद्देश्य जोकि एक साथ गुंथी हुई हैं ऐसा लगता है, कि ये मानव की बुरी अवस्था पर यीशु की महान सामर्थ की ओर संकेत देती हैं।

1. **दोनों ही की समस्याएं पूर्णतया पीड़ापूर्ण हैं।** याईर ने अपनी बेटी को धीरे- धीरे बुरी अवस्था की ओर बढ़ते देखा था, जिस समय वह यीशु के पास आया वह मरने की कगार पर थी। वह कहता है, '*मेरी छोटी बेटी मरने पर है*' (5:23)। स्त्री बारह वर्षों से दुख उठा रही है (5:25) और चिकित्सकों के पास जाने के प्रयास से बहुत ही निराश हुई है (5:26)। यह सहायता प्राप्त करने के प्रयास में वह अपने सभी वित्तीय स्रोतों का प्रयोग कर चुकी थी (5:26)। दोनों रोगियों को ही निराशा का सामना करना पड़ा था और यह पूर्णतया असंभव प्रतीत होता था कि कोई उनकी सहायता कर सकेगा।

   कई बार परमेश्वर एक लम्बे समय तक हमारे जीवनों में समस्याओं को लगातार आने देता है। या यह समस्या को ऐसी चरमसीमा पर पहुंचने देता है जहां से ऐसा लगता है कि स्थिति में परिवर्तन होना असंभव है।

2. **अपनी गंभीर दुर्दशा के बावजूद दोनों का विश्वास यीशु में था।** याईर ने विश्वास किया कि यीशु का एक स्पर्श उसके बच्चे के जीवन को फिर से लौटा सकता है (5:23)। स्त्री ने विश्वास किया कि यीशु

से सामर्थ निकलती है, और उसके वस्त्र को छूने मात्र से ही वह चंगी हो जाएगी (5:28)।

3. **याईर और स्त्री दोनों ने ही पाया कि जहां से उन्हें जवाब मिलना था, उसके लिए उन्हें महान चुनौतियों का सामना करना ही था।** स्त्री रहस्यात्मक रूप से चंगाई प्राप्त करने की आशा कर रही थी। कोई भी समझ सकता है कि वह ऐसा क्यों चाहती थी। विधिवत् रूप से वह अशुद्ध थी। भीड़ में उसका होना तथा लोगों से उसका स्पर्श होना उन्हें क्रोधित कर देता, यदि वे यह जान जाते कि वह मूसा की व्यवस्था के अनुसार विधिवत् रूप से 'अशुद्ध' थी।

   जव उसे बिना किसी के जाने चमत्कार का अनुभव हुआ–यहां तक कि यीशु के जाने बिना भी, वह अचानक से ही सामने आ जाती है। यीशु जानना चाहता है कि उसे किसने छुआ है। वह डरी हुई आगे आती है। क्या वह किसी समस्या में पड़ने वाली है? चूंकि उसने अनुमति के बिना चंगाई को प्राप्त किया था, इस कारण से क्या उसकी चंगाई को रद्द कर दिया जाएगा। जिस समय उसे अपने बारह वर्ष के दुख से छुटकारा प्रतीत हुआ, वहीं उसकी आशा के सम्मुख चुनौती आ जाती है।

   याईर के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। वह, यीशु और तीन शिष्य याईर के घर तक चलकर जाते हैं। ऐसा लगता है कि वह कुछ ऐसा असंभव करने जा रहा है याईर की बेटी चंगी हो जाएगी। अचानक एक संदेशवाहक आकर कहता है '*यीशु को तंग मत कर तेरी बेटी तो मर गई है।*' याईर के लिए यह समाचार उस समय कितना निराशाजनक रहा होगा जबकि जिससे चंगाई के प्रति उसकी आशाएँ शिखर पर थीं। बुरी दशा में भी जब यीशु लड़की के लिए कहता है कि वह सो रही है–इसका अर्थ यह है कि वह कुछ समय पश्चात् ही जीवित हो उठेगी–भीड़ अपमान के साथ उस पर हंसने लगी। स्त्री के समान याईर को भी अपनी सारी आशाएं नष्ट होती प्रतीत हुई उस समय पर जबकि वह यीशु से कुछ अद्भुत प्राप्त करने की अपेक्षा कर रहा था।

4. **यीशु दोनों ही पीड़ितों को दृढ़ प्रोत्साहन देता है।** '*बेटी तेरे विश्वास ने तुझे चंगा किया है: कुशल से जा*' स्त्री से उसने कहा। इस सबके बाद

   उसने चमत्कार को नहीं खोया! यीशु इसे समझता है, और केवल उसे यह अनुभव कराना चाहता है कि उसके विश्वास के कारण ही उसे ऐसी आशीष मिली।

   याईर को भी प्रोत्साहन मिलता है। यीशु ने कहा, 'मत डर; केवल विश्वास रखे (5:36)।

5. **दोनों पीड़ितों को अपने जीवनों में यीशु की महान सामर्थ का अनुभव मिलता है।** स्त्री को यीशु की उदारता और करुणा का अनुभव प्राप्त होता (5:34)। उसे वह आश्चर्यक्रम मिलता है जिसे वह प्राप्त करना चाहती थी। याईर भी यीशु के स्नेही रूप को देखता है, जब वह लड़की का हाथ पकड़कर उसे उठाता और उससे शिक्षित लोगों की की यूनानी भाषा में नहीं बल्कि साधारण लोगों की अरामी भाषा में बोलता है, एक बच्चे द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा (5:41), और उसके ठीक हो जाने पर यीशु उसके प्रति चिन्ता प्रगट करते हुए कहता है कि उसे कुछ खाने को दिया जाए, जिससे वह स्वयं को अच्छा व तंदुरुस्त अनुभव करे (5:43)।

यीशु घटना को गुप्त रखने का निर्देश देता है। पुनरुत्थान के समाचार की उत्तेजना केवल उसके कार्य में बाधक बनेगी। चार चमत्कार (5:1–43) खतरों और दुष्टात्माओं पर बीमारी और मृत्यु पर यीशु की सामर्थ को प्रगट करते हैं। परन्तु इस विशुद्ध उत्तेजना में यीशु की कोई रुचि नहीं है। वह आश्चर्य कर्म करनेवाले के रूप में नहीं बल्कि परमेश्वर के ईश्वरीय पुत्र के रूप में आया है, क्रूस की ओर अपना मार्ग बनाने को। पुनरूत्थान के बाद कहानियों को सुनाया जा सकता है। उस समय तो यीशु यही चाहता था कि लोग विश्वास द्वारा जानें कि वह कौन है।

अध्याय 11

नासरत के विशेषज्ञ (मरकुस 6:1-6अ)

हम मरकुस के अनुसार यीशु के जीवन की दूसरी अवधि में हैं। दूसरी अवस्था का आरम्भ मरकुस 3:7 में हुआ, जहां मरकुस बताता है कि यीशु कफरनहूम क्षेत्र से कैसे निकला (1:21; 2:1) और झील के एक ओर गया (3:7)। लोग एक बड़े क्षेत्र से उसके पास आए(3:8)। उसे समुद्र तट पर प्रचार करना था और भीड़ के बहुत हो जाने पर वह नाव पर बैठकर झील से निकल जाएगा (3:9)। अब वह एक चंगा करनेवाले के रूप में प्रसिद्ध हो गया था (3:10)। दुष्टात्माओं ने उसका आज्ञापालन किया (3:11), यद्यपि उसने उन्हें इस बारे में विज्ञापन करने से मना कर दिया था कि वह कौन है (3:12)।

उसने अपने शिष्यों को अधिकारिक कार्यकर्त्ता के रूप में नियुक्त किया, जिन्हें प्रेरित शीर्षक दिया गया (3:13-19)। उसके परिवार ने उसे नहीं समझा (3:20-21) तथा व्यवस्था के अधिकारिक शिक्षकों ने उसे अस्वीकृत कर दिया (3:22-30), अत: यीशु ने अपने चारों ओर ऐसे परिवार को एकत्रित किया जो परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने

का मन रखते थे (मरकुस 3:31-35)। उसने इस भीतरी समूह को शिक्षा दी (4:1-34)। जब वे झील पर से गए तब प्रकृति पर उसके नियंत्रण को दिखानेवाला चमत्कार हुआ (4:35- 41), और जब वे गिरासेनियों पहुंचे यीशु ने शैतान पर अपनी सामर्थ को प्रगट किया (5:1-20)। झील के पश्चिमी ओर की वापस यात्रा करते हुए, उनका सामना एक भीड़ से हुआ और बहुत से चमत्कार हुए (5:21-43)। अब यीशु अपने शहर नासरत की ओर जाता है (6:1-6अ)। यह फिर यीशु के कार्य में एक मोड़दार स्थान है। एक बार पुन: आराधनालय में सब्त के दिन यीशु को अस्वीकार किया जाता है (जैसा 3:1-में है)।

1. **यीशु अधिकार का एक प्रबल प्रभाव देता है।** वह 'उस स्थान को छोड़' कर (संभाव्यत: कफरनहूम) और नासरत को जाता है (6:1)। वह आराधनालय में उपदेश देता है (6:2)। लोग यीशु के ज्ञान व अधिकार से प्रभावित हो जाते हैं, यीशु जानता है कि वह परमेश्वर की ओर से है। वह जानता है कि उसके पास पवित्रात्मा है। वह जानता है कि जो कुछ वह कह रहा है वह सत्य है। यह सभी मिलकर यीशु को महान अधिकार देते हैं।
2. हम देखते हैं कि अविश्वास कितना असंगत है। नासरत के लोगों ने यीशु के ज्ञान को जाना (6:2ब)और उन्होंने उन बहुत से आश्चर्यकर्मों के बारे में सुना था जिन्हें यीशु ने फरनहूम के निकट किया था (6:2ब) अभी कुछ समय पहले ही उसने लहरों पर नियंत्रण किया था, दुष्टात्माओं को चले जाने की आज्ञा दी तथा रोग और मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी जो कुछ यीशु ने किया था वे उस बारे में जानते थे। तौभी उन्होंने विश्वास नहीं किया! अविश्वास ने मनुष्य के हृदय को दृढ़ता से पकड़ा हुआ है। परमेश्वर की आशीषें हमारी नाक के नीचे ही होती हैं तौभी हम उन्हें अस्वीकृत कर देते हैं!
3. घनिष्ठता का दावा करना अविश्वास का कारण है। यह बहुत अजीब बात है कि स्त्री और पुरुष इस तरह से सोचते हैं कि उन्हें प्रत्येक चीज़ का ज्ञान है। जब हम ऐसा मानते हैं कि हम कुछ जानते हैं तो हम ऐसी चीज़ को अस्वीकृत करते हैं जो इसका माप नही करतीं कि हम क्या जानते

है? तौभी किसी चीज़ से अनजान बने रहने के साथ-साथ उससे पूर्ण रूप से अनजान बने रहना भी संभव है। नासरत के लोग यीशु को बहुत अच्छी तरह से जानते थे। वह उसे तब से जानते थे जब वह एक छोटा लड़का था। वे एक बढ़ई के रूप में उसकी पृष्ठभूमि को जानते थे (6:3)। वे उसके परिवार को जानते थे अत: उन्हें ऐसा लगता था कि वे सब कुछ जानते थे। 'यीशु के बारे में ऐसी कौन सी चीज़ हो सकती है जिसे हम न जानते हों?

लोग किसी परिचित चीज़ से संबन्धित नये विचार को ग्रहण करने में कठिनाई महसूस करते हैं। इसी कारण धर्म विज्ञानी प्राय: मैं उस नई चीज़ को अस्वीकृत कर देते है जो बाइबल में पाई जाती है। इसी कारण पेंटिकोस्टल लोग पवित्रात्मा के एक नये कार्य को अस्वीकृत कर सकते हैं। वे कहते हैं '' हम इस बारे में सब कुछ जानते हैं। यह हमारी विशेषज्ञता का क्षेत्र है। यह ऐसी चीज़ है जिसके बारे में हम सब कुछ जानते हैं।' प्रत्येक विशेष के लिए यह बहुत 'दीनता' का कार्य होगा कि प्रत्येक उस विषय में से किसी नई चीज़ को खोजे जिसके बारे में वह स्वंय को निपुण समझता हो!

4. अविश्वास के कारण आशीषें चली जाती हैं। यीशु वहां सामर्थ का कोई काम न कर सका' (6:5)। इस असमर्थता का वर्ग क्या है यीशु को सदैव विश्वास की आवश्यकता नहीं हुई। यीशु ने उस समय भी मृतक को जिलाया जब किसी ने विश्वास नहीं किया कि वह ऐसा कर पाएगा या करेगा। उसके लिए इसका अपना विश्वास ही प्रयाप्त था कि वह किसी भी तरह का चमत्कार कर सके।

मरकुस 6: का निश्चित रूप से अर्थ है कि वह परमेश्वर की इच्छा में 'समर्थ' नहीं था। एक अविश्वास के स्थान पर चमत्कार करना अनुपयुक्त होगा।

इससे यीशु को हैरानी हुई! यीशु वास्तव में मनुष्य था। वह सब कुछ नहीं जानता था। किसी भी तरह, एक व्यक्ति के रूप में, वह उस ज्ञान को रख सका था जिसे परमेश्वर ने सीमित कर रखा था, तथा मनुष्य के पुत्र के रूप में जो उसका ज्ञान था उसे उसने मस्तिष्क में नहीं रखा था। जब परमेश्वर का

पुत्र एक मनुष्य बना तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसने उस ज्ञान को एक ओर रख दिया था जो परमेश्वर के पुत्र के रूप में उसके पास हो सकता था। इसी कारण वह हैरान हुआ था।

नासरत वह स्थान था जिसे महान आशीषों को प्राप्त करना चाहिए था। परन्तु उनका सोचना था कि वे यीशु के बारे में अपने ज्ञान में 'विशेषज्ञ' थे। और विशेषज्ञ प्राय: आशीषें से चूक जाते हैं क्योंकि इनका बहुत अधिक विशेषज्ञ होना उन्हें विश्वास से दूर ले जाता है। विश्वास करने के लिए 'विशेषज्ञ' होना ज़रूरी नहीं है। विश्वास यह मानता है कि हम अनजान हैं तथा स्वयं को उसके प्रति समर्पित करता है जो परमेश्वर प्रगट करता है। नासरत ने आशीष को खो दिया क्योंकि वे बहुत अधिक जानते थे।

अत: हम मरकुस द्वारा बताई गई इस कहानी की अन्तिम अवस्था में आ जाते हैं। हमने एक ऐसे समय को देखा है जहां यीशु को प्रसिद्धि मिली और तौभी उसे यहूदी अगुवों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया (1:21-3:6)। और हमने ऐसा भी देखा है जहां यीशु ने गलील के समद्र के आस पास के क्षेत्रों की यात्राकी, परन्तु उसके अपने शहर नासरत में उसे अस्वीकृत कर दिया गया (6:1-6अ)। तौभी प्रत्येक समय अस्वीकृत होने पर भी यीशु अपने कार्य से अलग नहीं हुआ; बजाए इसके वह आगे बढ़ा। जब फरीसियों ने यीशु की हत्या करने की योजना बनाई, उसने अपने प्रेरितों का चयन किया। अब कुछ इसी तरह से होता है। जब नासरत उसे अस्वीकार कर देता है, वह बारह को उनके प्रथम मिशन पर भेजता है।

अध्याय 12

विस्तार और विरोध

यीशु के कार्य में प्राय: यह देखा गया है कि विरोध के पश्चात् विस्तार हुआ है। जिस तरह यूहन्ना की गिरफ़्तारी ने यीशु को गलील जाने के लिए प्रेरित किया था (1:14), और जिस तरह से यीशु की हत्या करने की योजना ने उसे बारह को नियुक्त करने को प्रेरित किया, इसी तरह से अब नासरत में अस्वीकारे जाने (6:1-6 अ) ने यीशु को बारह को उनके प्रथम मिशन पर भेजने के लिए प्रेरित किया। मरकुस के अनुसार, यह उसके (यीशु के) साथ कार्य करने के लिए आमंत्रित किया गया: उसके बाद उन्हें एक विशिष्ट नाम 'प्रेरित' दिया गया । अब उन्हें एक मिशन पर भेजा गया है परन्तु इस योजना में यीशु उनके साथ नहीं होगा (6:6-व-7)

1. सबसे पहले, वह उन्हें एक उदाहरण देता है। वह गांवों में सिखाते हुए गया। उन्हें कार्य पर भेजने से पूर्व वह उनके साथ पहले से उस मिशन पर गया (6:6ब)।
2. वह उन्हें 'भेजता' है (6:7)। समय आने पर वे जान जाएंगे कि वे परमेश्वर की इच्छा में होकर परमेश्वर के कार्य को कर रहे हैं। वे परमेश्वर के आगे-आगे नहीं दौड़ रहे हैं।

3. वह उन्हें इस तरह से भेजता है जिससे किसी भी कर्मी को कभी अकेलेपन का अहसास नहीं होगा। मरकुस बताता है कि उन्हें दो-दो करके भेजा गया (6:7)।
4. वह उन्हें अशुद्ध आत्माओं पर अधिकार देता है (6:79)।
5. उन्हें इस्राएल के लोगों के अतिथ्य-सत्कार कार पर भरोसा करना है। उन्हें इस तरह से जाना है कि वे जिन्हें प्रचार करते हैं उन पर निर्भर हों। न रोटी न झोली, न पैसे, न कोई फालतू कुरता लें (6:8-9)। वे अपने साथ एक लाठी ले सकते हैं। (उन्हें लाठी को कहा गया था--न लाठी लो, क्योंकि मज़दूर को उसका भोजन मिलना चाहिए, मत्ती 10:10 में कहता है यहां दिये गए निर्देश इस सच्चाई से संबन्धित है कि यीशु यहां स्वयं की घोषणा इस्राएल के लिए कर रहा है। जब अन्यजातियों के बीच सुसमाचार-प्रचार का कार्य किया जाता है, तो कोई उनसे किसी भी तरह के समर्थन की अपेक्षा नहीं कर सकता है (देखें 3 यूहन्ना 7, अन्यजातियों से कुछ नहीं लेते') परन्तु जब उनकी सेवकाई परमेश्वर के लोगों में होती है, तो कर्मियों के लिए यह अपेक्षा की जाती है कि उनकी देखरेख परमेश्वर के लोगों के द्वारा ही की जाए। आधुनिक कलीसिया का भी इसी तरह का सिद्धान्त है: सुसमाचार प्राप्त करते हैं; शिक्षक कलीसियाओं से ग्रहण करने के द्वारा समर्थन प्राप्त करते हैं।

   जब उन्हें ऐसा घर मिलता है जहां वे सुविधा से रह सकें तो यदि संभव हो, वे उस समयं में उस शहर के उस एक स्थान पर ही ठहरे रहें। बार-बार जाना थका देनेवाला होता है!

   अस्वीकृत कियेजाने पर उन्हें अपने पैरों की घूल झाड़ते हुए-यह एक प्रतीकात्मक क्रिया है तो यह बताती है कि शहर अशुद्ध है तथा आने वाले समय में इसे परमेश्वर के न्याय का सामना करना होगा। यह कार्य उन पर 'एक गवाही होगा' परमेश्वर के सम्मुख एक ऐसे चिन्ह के रूप में कि शहर न्याय के लिए उपयुक्त है।
6. उनका संदेश पश्चात्ताप का संदेश है। यदि लोगों को परमेश्वर की उन आशीषों को अनुभव करना है जो यीशु के द्वारा आ रही हैं तो लोगों को कई चीज़ों के बारे में अपने मन को बदलना तथा पुराने मार्गों को छोड़ना होगा।

7. इसलिए वे गए और उन्हें बहुत अधिक आत्मिक सामर्थ को दिया गया (6:14)। जिस संदेश का प्रचार उन्होंने किया उसकी पुष्टि इस बारे में सुनना नहीं चाहता था कि यीशु क्या कर रहा है, हेरोदेस आन्तिपास था, हेरोदेस महान के पुत्रों में से एक, जिसे मत्ती 2:1-20 की कहानी में अच्छी तरह से जाना जाता है। जब 4 ई. पू. में महान हेरोदेस की मृत्यु हो गई, उसके राज्य का विभाजन हो गया और हेरोदेस अन्तिपास 39ई. तक गलील का शासक बना रहा।

1. हेरोदेस वह व्यक्ति था जो जानता था कि उसने बहुत बुरा पाप किया है। हेरोदेस अन्तिपास का एक भाई था, हेरोदेस फिलिप्पुस, जिसका विवाह हेरोदियास से हुआ था। हेरोदेस अन्तिपास ने हेरोदियास को फिलिप्पुस को छोड़ने तथा स्वयं से विवाह करने कि लिए राजी कर लिया (6:17 ब)। यह लैव्ययव्यस्था 18:16 और 20:21 की व्यवस्था के विरुद्ध था।

2. हेरोदेस ने यूहन्ना के द्वारा परमेश्वर की वाणी को सुना। यूहन्ना बपतिस्मा देनवाले ने स्पष्ट रूप से कहा था कि जो हेरोदस ने किया वह गलत था (6:18), और हेरोदेस जानता था कि जो कुछ यूहन्ना ने कहा वह सही था। उसने अपने भाई की पत्नी को रख लिया था। हेरोदियास बैर रखने वाली स्त्री थी (6:19)।

3. कुछ समय हेरोदेस एक शंकित अवस्था में रहा। हेरास अपनी पापमय अवस्था को लेकर शंका में था। उसने यूहन्ना को कारावास में रखा, तथापि उसने उसे हेरोदियास से बचाकर रखा (6:20)। वह जानता था कि वह भला आदमी है और उसे यूहन्ना का सुसमाचार सुनना अच्छा लगता था (6:20)।

   तौभी उसने स्वंय के पाप के लिए कुछ नहीं किया। उसे फिलिप्पुस, हेरोदियास और यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले के पास जाकर यह कहना था कि वह जानता है कि जो कुछ उसने किया गलत है। परन्तु वह अपने घमण्ड को त्यागना नहीं चाहता था।

4. हेरोदेस अपने घमण्ड में फंसने के कारण बड़े पाप में गिर गया। पाप करना पाप की रक्षा करना है। हेरोदेस ने अपने भाई की पत्नी को रखने के कारण पाप किया था। परन्तु उसके बाद यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला

उसके पास परमेश्वर की ओर से एक विशिष्ट वचन को लेकर आया। इसलिए उसने बैर व घृणा से भरकर यूहन्ना को कारावास में डाल दिया। एक पाप को बचाने के लिए व्यक्ति दूसरा पाप करता है।

पाप से भरे जीवन की समस्या यही है। यह गहन से गहन बाधा की ओर लेकर जाती है। इसके बाद की दशा और बुरी हो गई। हेरोदेस अपनी दुष्टता को, सीमित करना चाहता था। वह यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले को और सताना नहीं चाहता था। परन्तु उसकी नई 'पत्नी हेरोदियोस अभी भी उस पर कुछ करने के लिए दबाव डाल रही थी। हेरोदेस के जन्मदिन पर एक विशालकार्य भवन में बहुत से लोग हंस रहे हैं। अधिकांश महत्वपूर्ण लोग वहां हैं (6:21)। हेरोदियास ने अपनी बेटी, राजकुमारी, को लोगों के सामने नृत्य करने के लिए इस तरह से प्रस्तुत किया कि एक वेश्या ही ऐसा, करना पसंद करेगी (6:22 अ)। जिस तरह से उसने नृत्य किया वह लोगों को पसंद आया और हेरोदेस ने मूर्खता से वह सब कुछ करने की प्रतिज्ञा की जो वह चाहती थी (6:22ब 23)। हेरोदियास द्वारा प्रेरित किये जाने पर उसने उसी समय यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले के लिए मांग की (6:24-25)। हेरोदेस फंस गया। वही घमण्ड जिसने उसे पाप को स्वीकार करने नहीं दिया, उसी ने उसे अपने दिये गए वचन को न तोड़ने के लिए भी प्रेरित किया। जाता उसने अपने अति के सामने मूर्ख दिखने की अपेक्षा हत्या करना ज्यादा पसंद किया । घमण्ड हमें अजीब मार्गो की ओर लेकर जाता हैं हेरोदेस ऐसा करने को अनिच्छुक है (6: 26) परन्तु तौभी यूहन्ना को प्राणदण्ड दिया जाता है (6:27-28)। यूहन्ना के शिष्य उसकी लोथ को गाड़ने के लिए ले जाते हैं। (6:29)।

5. अब हेरोदेस यीशु के बारे में सुनता है। अदभुत चीज़ यह है कि परमेश्वर हेरोदेस को एक और अवसर दे रहा है! हेरोदेस यह पता कर कहा है कि परमेश्वर को उसे दिये गया वचन दूर नहीं होगा। उसे यूहन्ना से छुटकारा पाना था परन्तु अब परमेश्वर का वचन उसके पास यीशु और उसके प्रेरितों के प्रचार द्वारा फिर से वापस आ रहा था।

सच में यह अदभुत करुणा थी। जब परमेश्वर का वचन हमारे पास लगातार आता है तो यह परमेश्वर की बड़ी करुणा है। जब वचन को उठा लिया जाता और हम परमेश्वर की ओर से अधिक कुछ नहीं सुन पाते हैं, तो

यह परमेश्वर का क्रोध है। आज, यदि तुम उसकी वाणी को सुनो तो अपने हृदय को कठोर न करो। संभव है कि आप अनिश्चित काल तक परमेश्वर के वचन को न सुनें ।

हेरोदेस को अवसर दिया था कि इस 'यूहन्ना से जो मृतकों में से जी उठकर लौट आया है' के पास जाकर दया की मांग करे। उसने यूहन्ना के प्रचार पर विश्वास किया। उसने अलौकिकता में विश्वास किया। उसने विश्वास किया कि परमेश्वर मृतकों को जिलाएगा। परन्तु हेरोदेस ने कार्य रुपमें कुछ भी नहीं किया। उसने परमेश्वर के वचन को सुना तो सही, परन्तु अपने मन को कठोर कर लिया।

कुछ समय पश्चात्, हेरोदेस अन्तिपास और यीशु एक दूसरे से मिले (देखें लूका 23:7-12)। परन्तु यीशु ने उससे एक शब्द भी नहीं कहा। हेरोदेस ने यीशु को पूर्ण रूप से अस्वीकृत कर दिया (देखें लूका 23:11-12)।

हेरोदेस ऐसा व्यक्ति था जो यह जानता था कि परमेश्वर उससे बात कर रहा था, परन्तु इस बारे में उसने कुछ नहीं किया। इसके बाद वह परमेश्वर के पुत्र से मिला परन्तु अब बहुत देर हो गई थी। चूंकि उसने परमेश्वर की वाणी का विरोध किया था, परमेश्वर की वाणी अब उस तक नहीं आ रही थी। यीशु के पास उसे कहने को कुछ न था।

संसार के लिए यीशु का मिशन जारी रहेगा। हेरोदेस को इसे ग्रहण करने का एक अवसर मिला परन्तु वह इस सुअवसर से चूक गया। हेरोदेस भटक गया था, परन्तु परमेश्वर का राज्य यीशु के द्वारा निरन्तर बढ़ता रहेगा।

अन्तिम टिप्पणियाँ

1 मत्ती और मरकुस के बीच में कोई विरोधामास नहीं है। मत्ती लाठी के लिए मना नहीं करता; वह कहना चाहता है कि इसे उसे दूसरों के द्वारा दिया जाना चाहिए क्योंकि कार्यकर्त्ता इस तरह के समर्थन के योग्य हैं।

2 ऐसा लगता है कि महान हेरोदेस के फिलिफुस नामक दो पुत्र थे (परन्तु उनकी माताएं अलग थीं)। एक हेरोदेस फिलिप्पुस है, मरियम ने और महान हेरोदेस का पुत्र। देखें एच. होएनर, 'हेरोदेस अन्तिपास' (सी यू पी,1972, पृ.131-136)।

अध्याय 13

यीशु की ओर से बहुतायत का प्रबन्ध (मरकुस 6:30-56)।

यीशु को विश्राम की आवश्यकता महसूस होती है। यूहन्ना को कुछ समय पूर्व ही प्रणदण्ड दिया गया है। यह नवीन विचार और प्रार्थना का समय है। यीशु ने अपने शिष्यों को कुछ समय के विश्राम के लिए ले जाने का निर्णय किया (6:30-32)। परन्तु यीशु को कभी विश्राम नहीं मिला। उसके दूसरी ओर पहुंचने पर एक बड़ी भीड़ उसकी प्रतीक्षा कर रही है (6:33)। उसे उन पर तरस आया और उन्हें शिक्षा देना आरम्भ किया (6:34)। उसे उनके लिए बहुत दुख हुआ क्योंकि बहुत देर हो गई है और लोग भूखे हैं। शिष्य लोगों को भेज देना चाहते हैं। (6:35-36), परन्तु यीशु ने कहा, ''तुम ही उन्हें खाने को दो' (6:37)। उसने शिष्यों को पांच हज़ार लोगों को भोजन खिलाने का चमत्कार करने का प्रथम सुअवसर दिया!

1 यह अवसर शिष्यों के लिए विश्वास में बढ़ने तथा वह करने का था जो यीशु करना चाहते थे।

यह चमत्कार यीशु की कहानी में निस्सन्देह एक बहुत ही संगीन घटना थी। यह सभी चार सुसमाचारों में पाई

जाती है। मत्ती और मरकुस भोजन खिलाने की दूसरी चमत्कारिक कहानी का भी वर्णन करते हैं (देखें मरकुस 8:1-10)। क्योंकि शिष्य इसके महत्व की नहीं देख सके, वे यीशु के पानी पर चलते हुए अपनी ओर आने को समझ नहीं सके (देखें 6:52)। तथा विषय बिन्दु बाद में अधिक सुस्पष्ट हो जाता है(8:17-212)। सभंवत वे उस मार्ग के अनुसार या राज्य में तो बढ़ रहे होंगे या फिर नहीं बढ़ रहे होंगे जिसमें उन्होने इस चमत्कार को समझा था।

जिस समय शिष्यों ने लोगों की आवश्यकता को देखा चमत्कार का विचार उनके मस्तिष्क में नहीं आ सका। वे केवल धन तथा इतनी बड़ी भीड़ को भोजन कराने की कठिनाइयों के बारे में ही सोच रहे थे (6:37 ब)। इसलिए यीशु उसके सामने चमत्कार करता है और इस चमत्कार में उनका प्रयोग भी करता है। उन्हें जाकर रोटी की तलाश करनी है। जिसका प्रयोग यीशु कर सके (6:38)। चमत्कार का एक क्रमानुसार तरीके से किया गया। लोग समूहों में बैठ जाते हैं (6:39-40), और चमत्कार होता है (6:41-44)।

तौभी यीशु ने आशा की कि वे चमत्कार करेंगे। लोगों की आवश्यकता शिष्यों के लिए इस बात को जानने का एक निमंत्रण था कि यीशु क्या करेंगे। वे केवल व्यावहारिक रूप से ही लोगों की आवश्यकता को देख सकते थे(6:35-36)। क्या वे एक कदम आगे जाकर उस आत्मिक जानकारी को नहीं पा सकते थे कि यीशु क्या करेगा? 'तुम ही उन्हें खाने को दो' यीशु ने कहा। वे अब कुछ समय के लिए यीशु के साथ थे। उन्होंने उस तरीके को देखा था जिसमें यीशु ने लोगों की आवश्यक्ता को देखकर प्रतिक्रिया दी थी। क्या वे नहीं देख सकते थे कि यीशु क्या करना चाहता है? यीशु को अद्‌भुत तथा चमत्कारिक रुप से लोगों को शिष्यों द्वारा भोजन कराने का तरीका अच्छा लगा बजाए इसके कि यीशु उनके लिए इसे करता। तौभी हमारे अपने तरीके में तथा संभवत: नाट्य रूप में यीशु चाहता है कि हममें उसका मन हो कि हम जानें कि जो वह करना चाहता है उसे करने से पहले वह हमें उसके बारे में बताता है।

2. यीशु उन्हें सिखाना चाहता था कि सशक्त स्त्रोतों के बावजूद कितना कुछ उसके द्वारा हो सकता है। यीशु शिष्यों को प्रयोग करने का चयन करता है। वह रोटी तथा मछलियों की छोटी तथा महत्वहीन संख्या का प्रयोग करने

का चयन करता है। यीशु ने ऐसा क्यों किया? उसने इतनी संख्या में भोजन को उपलब्ध कराया कि बचे हुए भोजन की बारह टोकरियां बचीं। अत: वास्तव में उसे मछली व रोटी की आवश्यकता नहीं थी! तौभी उसने इनका प्रयोग किया। जो कुछ शिष्यों ने उसके सामने रखा उसने उनका प्रयोग करने का चयन किया।

3. यीशु उन्हें दिखाना चाहता था कि वह ही इस्राएल का राजा है। वे एक जंगल में थे। मरकुस इसका वर्णन तीन बार करता है (6:31, 22, 35,)। यह उस समय के समान था जब इस्राएली जंगल में थे और ऐसी भेड़ों के समान थे जिनका कोई चरवाहा न हो। ऐसे समय में मूसा ने लोगों के एक अगुवे के लिए प्रार्थना की, 'जिससे यहोवा की मण्डली बिना चरवाहे की भेड़ बकरियों के समान रहे' (गिनती 27:17)। इन जंगल के समयों में मूसा ने उन पुरुषों को नियुक्त किया जो समूहों के प्रभारी होंगे। जिसमें सौ और पचास के समूह शामिल हैं। देखें निर्गमन 18:21)। उस समय में लोगों को भोजन से तृप्त करने के लिए आकाश से मन्ना गिरा।

यीशु चाहता था कि शिष्य देखें कि वह कौन है: परमेश्वर का राजा जो कि हेरोदेस और मूसा से भी महान है। यूहन्ना के सुसमाचार से हम जान पाते हैं कि कुछ लोग यीशु को एक राजा के रूप में जानते थे- परन्तु जिस तरह के राजा को वे चाहते थे, वह उद्धारकर्त्ता से अधिक एक राजनेता तथा सिपाही हो।

4. यीशु के बारे में उनकी समझ की शीध्र ही जांच, होनी थी। अगली कहानी पांच हज़ार को भोजन कराने से जुड़ी हुई है। शिष्यों को यीशु से आगे बैतसैदा भेजा जाता है ।(6:45)। यीशु ने झील से जाकर अपना समय प्रार्थना में बिताया जैसा कि वह हमेशा करता था (6:46)। वह पहाड़ पर जाकर उनके लिए प्रार्थना करने में समर्थ है जिन्हें एक छोटे समुद्र को पार करना है।

परन्तु जब शिष्यों ने झील को पार किया पुन: मौसम खराब हो गया (6:47-48)। यीशु ने परमेश्वर पर भरोसा किया कि वह शिष्यों तक पहुंचने में उसकी सहायता करेगा। और पानी पर चलकर वह उन तक गया (6:48 अ)। उनकी सहायता करने हेतु उन तक पहुंचने के लिए नहीं चल रहा है, परन्तु उन्हें यह दिखाने कि लिए कि वह अपने पिता की सामर्थ से क्या नहीं

कर सकता है (6:48 ब)। लेकिन शिष्य भय से चिल्लाने लगे(4:49-50 व अ)। अत: यीशु उन्हें प्रोत्साहन देता है (6:50ब)। और नाव में आ जाता है (6:15)। वे अचम्भित हैं (6:519)। परन्तु यीशु उनसे कहता है कि उन्हें हैरान होने की आवश्यकता नहीं है (6:52) यदि पांच हज़ार को भोजन खिलाने के चमत्कार को वास्तव में समझ लिया जाता तो वे जान जाते कि यीशु परमेश्वर का राजा होने के नाते आश्चर्यकर्म करने में समर्थ है। ऐसा इसलिए था क्योंकि वे यीशु को जानने में धीमें थे कि वह कौन था, वे इस तरह की चीजों पर विश्वास करने में धीमें थे जैसे उसका पानी पर चलना। जल्द ही वे अपने गंतव्य पर पहुंच गए तथा पुन: बीमारों की एक भीड़ को चंगा किया गया (5:53-56)। यहां तक कि यीशु के वस्त्रों का एक स्पर्श भी उनके लिए आशीष होने को पर्याप्त था।

अध्याय 14

अनुपयोगी कर्मकाण्डवाद
(मरकुस 7:1-23)

हम सुसमाचार के उस विभाग में हैं जहां यीशु अभी भी गलील में सेवकाई कर रहा है। नासरत में अस्वीकार किये जाने के पश्चात् उसने बारह को भेजा (6:6 ब-13), परन्तु हेरोदेस राजा ने उसके साथ संदेही व्यवहार किया (6:14-29)। उसने पांच हज़ार को भोजन खिलाया (6:30-44) और पानी पर चला (6: 45-52)। भीड़ अभी भी उसके पीछे चल रही थी (6:53-56)। अब उसे अस्वीकार किये जाने की एक और कठिनाई सामने आती है। जो कि उसकी हत्या करने की योजना बनाने (3:6) तथा नासरत में अस्वीकार किये जाने के समान है (6:1-6 अ)। इस समय की समस्या यहूदी विधिवादिता द्वारा उसे स्वीकार किये जाने की थी।

इस समय तक यरूशलेम के धार्मिक अगुवे यीशु से अच्छी तरह से परिचित हो गए थे। वे यरूशलेम के लगभग सभी ओर से उस पर हमला करने के लिए आए। मरकुस 3:6 के अनुसार बताए गए समय में वे उसे मारना चाहते थे। अब उन्होंने यरूशलेम से कई शास्त्रियों तथा अधिकारियों को यीशु तथा उसकी शिक्षा के साथ निपटने को भेजा (7:1)।

1. **धर्मपरायणता और सच्चे विश्वास के बीच एक बड़ा अन्तर है।** घूमनेवाले फरीसियों ने ध्यान दिया कि यीशु तथा उसके शिष्य फरीसियों की कुछ धार्मिक रीतियों की परवाह नहीं करते थे, जिनमें से एक भोजन से पूर्व हाथ धोने की थी (7:2)। निस्संदेह भोजन से पूर्व हाथ धोने में कोई बुराई नहीं है और विश्व के कई भागों की यह एक परम्परा है, परन्तु फरीसियों ने इसे एक धार्मिक रीति बना दिया था। तथा जो लोग उनकी रीतियों का पालन नहीं करते थे, उन्हें वे बुरे लोग कहते थे।

   मरकुस बताता है कि फरीसियों की इस तरह की कई परम्पराएं थीं (7:3-4)। ये अतिरिक्त धार्मिक नियम पुराने नियम से नहीं आए थे। ये मूसा की व्यवस्था में भी नहीं थे। परमेश्वर ने उनसे कभी भी इस तरह से किए जाने के विषय में करने को नहीं कहा था।

   परन्तु यह 'धर्मपरायणता' की एक महान विशेषता है। अधिकांश धर्मों की अपनी रीतियां व नियम होते हैं। धर्मी लोग उन लोगों को बुरे लोग कहते हैं जो उनकी रीतियों व नियमों का पालन नहीं करते हैं। परमेश्वर के सच्चे ज्ञान के साथ भी ऐसा किया जा सकता है। पुराना नियम परमेश्वर का वचन था, परन्तु फरीसियों ने इसमें ऐसे कई नियमों को शामिल कर लिया था जो इसमें के नहीं थे। कुछ आधुनिक 'मृत मसीहियत' इसी तरह की चीज़ें करती है। जहां यीशु में विश्वास एक मृत धर्म के रूप में बदला जाता है-और ऐसा हो सकता है। आपके पास भी इस तरह की चीज़ें हो सकती हैं। लोग हर तरह के धार्मिक रिवाज़ों की खोज करेंगे और यदि आप उनका पालन नहीं करेंगे तो वे आप से नाराज़ हो जाएंगे। लोग उपवास रखने, क्रूस का चिन्ह बनाने तथा विशिष्ट वस्त्र पहनने के बारे में कठोर हो सकते हैं और तब वे सोचते हैं कि उनके इन अतिरिक्त नियमों का पालन न करने पर आप पाप करते हैं। '*तेरे चेले क्यों पुरनियों की रीतियों पर नहीं चलते*' उन्होंने पूछा (देखें 7:5)। परन्तु यीशु पर विश्वास रखना रिवाज़ का विषय नहीं है।

2. **यीशु इस तरह के धर्म की समींक्षा मानवीय नियमों का अनुसरण करने के रूप में करता है।** इस तरह के 'धार्मिक' लोग यीशु से कहते हैं, परमेश्वर के बारे में हमें अधिक से अधिक बता, परन्तु उनके हृदय

उससे दूर हैं। उनका धर्म, नियमों तथा धार्मिक रीतियों तथा दूसरे लोगों को यह बताना है कि उन्हें क्या करना है (देखें 7:6-8)! उनका धर्म वृहत रूप में परम्परा से जुड़ा विषय है। छोटी-छोटी रीतियां जो आरम्भ में बहुत अच्छी प्रतीत होती हैं, वह बाद में कठोर नियमों का रूप ले लेती हैं। इसी कारण लोग न्याय, करुणा तथा परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारिता रखने के सिद्धान्तों के समाप्त होने पर कार्य करने से कहीं अधिक धर्म के कठोर नियमों को पूरा करने के प्रति चिन्तित रहते हैं।

3. इस तरह की धर्मपरायणता कपटपूर्ण हो सकती है। यीशु एक उदाहरण देता है (7:9-10)। मूसा की व्यवस्था माता- पिता का आदर करने के विषय में बहुत ही सख्त थी। निर्गमन 20:12 की आज्ञा का अपमान करने वाले को मृत्यु की सज़ा दी जाती थी (देखें निर्गमन 21:17)। परन्तु फरीसियों ने एक धार्मिक चालबाज़ी की जो उनकी पांचवें नियम से बाहर निकलने में सहायता कर सके। अपनी कुछ सम्पदा पर 'कुर्बान' शब्द को कहना संभव था (7:11)। यह शब्द एक इब्रानी या अरामी शब्द है जिसका अर्थ 'भेंट' है। इसका अर्थ है कि सम्पदा को अब विशेष रूप से परमेश्वर को अर्पित कर दिया गया है। तौभी इसका वास्तव में यह अर्थ नहीं था कि सम्पदा को परमेश्वर को दे दिया गया है! इस तरह की घोषणा उस व्यक्ति के माता-पिता को सम्पदा (या और कोई भी चीज़) का उपयोग करने से रोक देती थी, कि वे उससे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करें (7:12-13)। परन्तु इसका प्रयोग इसके मूल स्वामी द्वारा किया जा सकता था।

   यह धर्मी बने रहने का एक कपटपूर्ण तरीका था, परन्तु यह माता-पिता की अवहेलना तथा पाचंवे नियम को अपमानित करने वाला था! फरीसी धर्म में इस तरह की कपटपूर्ण कई और भी चालबाजियां शमिल थीं-जैसा सभी धर्मो में होता है।

4. सच्चा विश्वास हृदय का एक विषय है। फरीसियों पर ध्यान न देते हुए यीशु ने लोगों से निवेदन किया तथा उन्हें एक दृष्टांत सुनाया कि वे उस पर विचार करें(7:14-16)। बाद में वह इसके अर्थ को शिष्यों को समझाता है(7:17-18 अ)। धार्मिक नियमों व विधानों का संबन्ध प्राय:

बाहरी चाल चलन से होता है, परन्तु वास्तव में बाहरी व्यवहार परमेश्वर के लिए कोई महत्वपूर्ण चीज़ नहीं है। निश्चय ही छोटे छोटे रिवाज़ जैसे पारम्पारिक हाथ धोने का परमेश्वर के लिए कोई महत्व नहीं रखता है। और भोजन के बारे में दिये गए नियम भी महत्वहीन हैं। व्यक्तित्व के बाहर की चीज़ वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण नहीं है (7:18 ब-19)। यहां तक कि शुद्ध और अशुद्ध भोजन (जो मूसा की व्यवस्था में विधान का विषय था) भी वास्तव में एक महत्वपूर्ण विषय नहीं है। इसका प्रभाव पेट पर पड़ता है परन्तु यह मानवीय व्यक्ति का स्पर्श नही करता । मरकुस बताता है कि यह सिद्धान्त वास्तव में शुद्ध और अशुद्ध भोजन के बारे में दी गई मूसा की व्यवस्था का अन्त करता है (7:19 ब)।

हृदय से जुड़ी चीज़ें क्या हैं। धार्मिक रीतियों या धार्मिक रीतियों की कमी का संबन्ध पाप से नहीं है। पाप और धार्मकता का संबन्ध इससे है कि हृदय में क्या चल रहा है। पुरुषों और स्त्रियों की समस्या यह है कि हम हृदय में पाप को लेकर जन्म लेते हैं। जो-कि मानवीय व्यक्तित्व को केन्द्रीय बिन्दु है। हृदय से पाप, द्वेष और अशुद्धता बाहर निकलते हैं (7:20-22)। ये मनुष्य के जीवन में उन्नत होते रहते हैं। हाथों को न धोना मनुष्य को 'दूषित' नहीं करता, परन्तु हृदय की दुष्टता पर नियंत्रण न कर पाना असफल होना है।

यरूशलेम के सभी ओर से आकर फरीसी यीशु में दोष ढूंढना चाहते थे। उनका सोचना था कि चूंकि वह रीतियों का पालन नहीं करता अत: वे उसकी आलोचना कर सकते हैं। परन्तु उनके स्वयं के मनों की दशा कैसी है? क्या वे स्वयं यीशु के विरुद्ध द्वेष से भरे हुए नहीं थे? क्या वे उसकी सफलता से ईर्ष्या या कड़वाहट नहीं रखते थे?

हाथ धोकर खाना खाने से क्या लाभ यदि मन में दुष्टता हो?

पाप रीतियों और परम्परा का विषय नहीं है। पाप हमारे भीतरी स्वरूप से आता है। और यीशु का उद्धार एक नये मन को देने से संबन्धित है। यीशु ही हृदय को शुद्ध कर सकता है। धार्मिकता ऐसा नहीं कर सकती।

अध्याय 15

विश्वास की सामर्थ

(मरकुस 7:24-37)

यीशु की सेवकाई में एक और मोड़ आता है मरकुस 1:14-7:23 में हुई प्रत्येक चीज़ गलील में घटी। परन्तु अब यीशु अगले क्षेत्र की ओर जाता है। हम यीशु को सूर और सैदा नामक स्थान पर देखेंगे (जहां वह एक सूरूफिनीकी स्त्री की सहायता करता है, 7:20-30) और दिकापुलिस नामक स्थान में एक बहरे व्यक्ति को चंगा करते हुए (7:31-37)। हम इस बात के कई कारण देखें सकते हैं कि यीशु ने अधिक विस्तृत रूप से यात्रा का आरम्भ क्यों किया । यद्यापि वह हेरोदेस से नहीं डरता था देखें लूका 12:32), वह हरोदेस के लोगों द्वारा पकड़वाए जाने से बचना चाहता था, और उसने अपने शिष्यों को हेरोदेस तथा फरीसियों दोनों से ही से ही सतर्क रहने को कहा था (8:15)। वह स्वयं सतर्क था तथा उन चीज़ों से बचता था जो उसकी सेवकाई का जल्द ही अन्त कर सकती थीं।

उसे किसी ऐसे स्थान की भी आवश्यकता थी जहाँ अपने शिष्यों तथा अनुयायियों के भीतर घेरे को शिक्षित करने को उसे काई न जानता हो।

अगली दो कहानियाँ एक या दो तरीकों से यीशु के उस विश्वास और आशीषों पर बल देती हैं जो वहीं पाया जाता है जहाँ विश्वास होता है। गन्नेसरत से (6:53) या 7:17 के घर से, यीशु सूर और सैदा को जाता है (6:53; 7:24 ब) परन्तु जल्द ही उसे जाननेवाला कोई उसे खोज रहा था। यीशु का दर्जा सूर और सैदा में भी उससे आगे-आगे जा पहुंचा था। एक सूरूफिकी स्त्री यीशु के बारे में सुनकर आकर निवेदन करती है कि उसकी दुष्टात्माग्रस्त लड़की को यीशु के द्वारा छुटकारा मिले (7:25-26)।

1. यीशु हमारे निवेदनों का जवाब देने में देरी कर सकता है। इस सबन्ध में स्त्री को एक निराशाजनक जवाब मिलता है ''पहले लड़कों को तृप्त होने दे (7:27 अ)। इसका अर्थ है कि इस समय एक अन्यजाति को आशीष देना मेरे लिए उपयुक्त न होगा; इस क्षण मैं यहां केवल अपने उन शिष्यों को शिक्षा देने के लिए हूँ जो कि यहूदी हैं। इसके बाद वह कहता है, लड़कों की रोटी लेकर कुत्तों के आगे डालना उचित नहीं (7:24 ब)वास्तव में इसका अर्थ है, इस समय मेरे लिए एक अन्यजाति स्त्री को आशीष देना उचित नहीं होगा: मैं इस समय यहां अपने उन शिष्यों में से हर एक को शिक्षा देने के लिए हूँ जो यहूदी हैं।

   यीशु एक हास्यजनक से कहीं अधिक एक अपमानित भाषा का प्रयोग करते हैं। स्त्री अन्यजाति है, 'छोटे कुत्तों' जो परमेश्वर के परिवार से बाहर हैं। शिष्य यहूदी विश्वासी हैं। तथा इसी कारण परमेश्वर के परिवार में विशिष्ट 'बच्चे हैं। उस समय तक यीशु को केवल यहूदी के लिए भेजा गया था। अन्यजातियों के बीच उसकी सेवकाई बाद में होगी जो उसकी मृत्यु तथा उसके पुनरुत्थान पश्चात् उसके शिष्यों द्वारा की जाएगी।

   इस तरह, यीशु उस स्त्री को एक निराशाजनक उत्तर देते हैं। वह वास्तव में उसके निवेदन का जवाब 'नहीं' में देता है।

   यीशु हमारे विश्वास की परीक्षा हमारे प्रार्थना करने पर हमारे प्रति निराश होने के द्वारा ले सकते हैं। उसके 'नहीं' कहने पर प्रगट होता है कि हम जो कुछ उससे मांग रहे हैं क्या हम उसके प्रति गंभीर हैं या नहीं या हमने अपने निवेदनों को हल्के रूप में सौंपा है। परमेश्वर हमसे आत्मिक अभिलाषाओं को रखने की अपेक्षा करता है; उसे उस समय खुशी होती है जब हम उससे अच्छी चीजों की मांग करते हुए निराश नहीं होते।

2. जब हम अपनी प्रार्थना में अटल बने रहते हैं तो इससे यीशु को खुशी होती है। सूरूफिनिकी स्त्री यीशु के जवाब को स्वीकार नहीं करती है वह अटल बने रहते हुए कहती है, सच है प्रभु तौभी--(7:28)। वह मानती है यीशु का इन्कार अन्त नहीं है और जिस प्रश्न का जवाब वह उससे चाहती है उसकी करुणा उससे कही अधिक है। यीशु ने कहा कि लोगों को नित्य प्रार्थना करना व हियाव न छोड़ना चाहिए (लूका 18:1)।

3. परमेश्वर के स्वरूप के आधार पर विश्वास उसके साथ तर्क करता है। महान विश्वास सदा परमेश्वर के साथ जुड़ा रहता है। यह तर्क परमेश्वर द्वारा उसकी आज्ञाओं के प्रयोग पर भी हो सकता है। या (जैसा यहां बताया गया है) यह परमेश्वर के साथ उसके स्वरूप के आधार पर तर्क कर सकता है। 'सच है प्रभु; तौभी कुत्ते भी तो मेज के नीचे बालकों की रोटी का चूरचार खा लेते हैं' (7:28)। यह परमेश्वर की करुणा के लिए किया गया एक निवेदन है। हां, वह कहती है, आपका, बच्चों- शिष्यों के लिए उत्तरदायी होना सही है। परन्तु एक पिता अपने बच्चों पर करुणा दिखाते हुए कुत्तों की ओर भी एक या दो टुकड़े रोटी के फेंक ही देता है। मैं एक कुत्ता हो सकती हूँ परन्तु आप क्या मेरी ओर वह टुकड़े फेंककर अपनी करूणा को नहीं दिखाएंगे? स्त्री स्वयं को यीशु की करुणा पर डाल रही थी। और यीशु को यह अच्छा लगा। परमेश्वर द्वारा 'नहीं' प्रतीत होने पर भी विश्वास बना रहता है। और विश्वास परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं, परमेश्वर की करुणा और परमेश्वर की सामर्थ से जुड़ा रहता है। इस तरह के विश्वास को प्रतिफल मिलता है। यीशु की प्रतिज्ञा के अनुसार (7:29)उस स्त्री के बच्चे को छुटकारा मिलता है (7:29)।

दिकापुलिस के बहरे व्यक्ति की चंगाई भी यीशु पर विश्वास तथा उन आशीषों पर बल देती है जो वहीं से आती हैं जहां विश्वास होता है। यीशु गलील से होकर सिदोन तक यात्रा करता है परन्तु उन क्षेत्रों से नहीं जाता जहां उसने पहले से सेवकाई की होती है। वह तब तक यात्रा को जारी रखता है जब तक कि यर्दन नदी के पूर्व की ओर के दस शहरों के क्षेत्र या (दिकापुलिस नहीं पहुंच जाता। यह गलील में नहीं है, यहां पर हेरोदेस का शासन था (7:31)।

जब वह वहां था, उसके पास एक ऐसे व्यक्ति को लाया गया जो बहरा व हकला था (7:32)।

1 विश्वास को स्थान दिये जाने के कारण यह कहानी रोचक है। ऐसा कहा जा सकता है: एक व्यक्ति के चंगा होने के लिए किसका विश्वास करना अनिवार्य है? जवाब है: किसी का भी विश्वास! यह बीमार व्यक्ति में, बीमार व्यक्ति के मित्रों में या चंगाई के लिए प्रार्थना करने वाले व्यक्ति में हो सकता है। इस संबन्ध में यह मित्र हैं जो व्यक्ति को यीशु के पास लेकर आते हैं। यीशु उसे एक ओर ले जाकर निजी रूप में उसे चंगा करता है (7:33)। इस समय में उसे किसी भी तरह की प्रसिद्धि की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि यीशु के संकेतों को उस व्यक्ति तक पहुचाना कठिन था कि वह उसे चंगा करना चाहता था। वह संकेत देता है कि वह उसके बहरे कानों में उंगली डालकर, थूककर उसकी अनुपयोगी जीभ को छुना चाहता है (7:33)। उसका स्वर्ग की ओर ऊपर देखना इस बात का संकेत देता है कि वह चाहता है कि परमेश्वर उस व्यक्ति के जीवन में कार्य करे (7:34)। वह उस व्यक्ति के जीवन में अपेक्षा को उत्तेजित करना चाहता था। कानों और जीभ की दोहरी चंगाई उसी क्षण हो गई (7:35)।

पुन: यीशु उस व्यक्ति से चमत्कार को गुप्त रखने के लिए कहते हैं (7:36) परन्तु, पुन: चमत्कार को गुप्त नहीं रखा जाता तथा चंगाई का समाचार चारों ओर फैल जाने पर यीशु को प्रशंसा और सराहना मिलती है (7:37)।

यीशु के चमत्कार इस बात का संकेत देते हैं कि अपनी प्रभुसत्ता में होकर वह किसी भी समय कुछ भी कर सकता है। यीशु अभी भी चंगा करने में समर्थ है। उसी समय वे पुनरूत्थित देह का पूर्वानुभव कर रहे हैं। एक दिन ऐसा आएगा जब देह की प्रत्येक शक्ति को पुन:स्थापित किया जाएगा ताकि फिर असफल न हो चंगाई के बताए गए चमत्कारों को आत्मिक दृष्टातों के रूप में भी लिया जा सकता है (जैसा कि उन्हें स्वयं सुसमाचारों में लिया गया है)। प्रत्येक व्यक्ति के लिए ज़रूरी है कि उसका प्रत्येक भाग परमेश्वर के लिए जागृत रहे। सुनने के लिए हमें आत्मिक कानों की आवश्यकता है। और परमेश्वर की स्तुति करने के लिए हमें ढ़ीली जुबानों की आवश्यकता है।

अध्याय 16

एक दूसरा स्पर्श
(मरकुस 8:1-26)

यीशु की सेवकाई के दो भोजन खिलाने वाले चमत्कार असाधारण रूप से महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। यीशु चाहता था कि उसके शिष्य उससे सीखें कि अपने लोगों की देखभाल करने के लिए वह बहुतायत से समर्थ था।

1. **यीशु अपने शिष्यों को यह सीखने का एक दूसरा अवसर देता है कि अपने लोगों की चिन्ता करने में वह समर्थ है।** एक बार पुन: शिष्यों को यीशु के बहुतायत के प्रबन्ध को देखने का अवसर दिया गया। इस समय वह एक ऐसे क्षेत्र में था जहाँ बहुत अधिक अन्यजाति थे। आवश्यकता पहले की तुलना में कहीं अधिक की थी। इस समय लोग तीन दिन से बिना भोजन के थे (8:1-2)। यीशु शिष्यों से लोगों की दुर्दशा का वर्णन करता है (8:3)। पुन: वह लोगों की सहायता करने में केवल व्यवहारिक कठिनाईयों पर ही विचार करता है (8:4)। शिष्यों को भोजन खिलाने के दूसरे चमत्कार की अपेक्षा नहीं थी।

   पुन: यीशु उस सामग्री का उपयोग करता है जिसे शिष्य

ढूंढ कर चमत्कारिक रूप से बढ़ा सकते हैं (8:5)। लोग चमत्कारिक रूप से तृप्त किये गए हैं (8:6-8अ) और बचे भोजन की सात टोकरियों को इकट्ठा किया गया है (8:8ब)। इस भोजन में चार हज़ार व्यक्ति शामिल थे (8:9अ)।

2. तौभी शीघ्र ही वे पुन: प्रकट करते हैं कि भोजन खिलाने वाले चमत्कारों से उन्होंने कुछ नहीं सीखा है। वे झील के पूर्वी क्षेत्र को पार कर दलमूनता पहुंचे (8:9-10)। यह स्थान अज्ञात है परन्तु निश्चय ही झील की पश्चिमी दिशा की ओर था। यहाँ फरीसी लोग यीशु से एक स्वर्गिक चिन्ह की मांग करते हैं, परन्तु उनकी मांग को ठुकरा दिया जाता है (8:11-13)।

यह बात यीशु को अपने शिष्यों को फरीसियों तथा हेरेदेस के धूर्त प्रभाव ('खमीर') की चेतावनी देने को प्रेरित करती है (8:14-15)। शिष्य यात्रा में रोटी ले जाना भूल गए थे, इस कारण वे उसकी चेतावनी के मुख्य बिन्दु को न समझ सके और सोचने लगे कि वह रोटी को भूल जाने के बारे में बोल रहा है (8:16)। परन्तु इससे केवल यह प्रगट होता है कि उन्होंने कुछ नहीं सीखा था (8:17-21) वे अभी भी यीशु की अपने लोगों के लिए चिन्ता को देख नहीं सके थे।

3. **यीशु एक चमत्कार करता है जिससे वे देख पाते हैं कि उनकी आत्मिक समझ को अतिरिक्त चंगाई की आवश्यकता है।**

अगला चमत्कार उनके देखने की धीमी गति से संबन्धित है। यह अद्वितीय है कि एक चमत्कार दो अवस्थाओं में हो। कहानी का प्रयोग यह प्रमाणित करने के लिए नहीं किया गया है कि यीशु के चमत्कार अधूरे सफल भी हो सकते हैं-और इसलिए आज भी आधे सफल चमत्कारों की अपेक्षा की जा सकती है! निश्चय ही इस विषय को विमर्शपूर्वक शिष्यों को उनका रूप दिखाने के लिए दिया गया था। यीशु की महानता को देखने की उनकी मन्दगति उस आधी-चंगाई पाए अंधे व्यक्ति के समान थी।

इस व्यक्ति को बैतसैदा में यीशु के पास लाया गया (8:22)। यीशु उसे चंगा करता है परन्तु चंगाई अधूरी प्रतीत होती है, क्योंकि चंगा हुआ व्यक्ति अपने चारों ओर लोगों को वृक्षों के समान चलता हुआ देखता है (8:23-24)।

उसके बाद व्यक्ति को यीशु को दूसरा स्पर्श मिलता है (8:25अ), और वह पूर्ण रूप से चंगा हो जाता है (8:25 ब)। उसे बैतसैदा न जाने के लिए सावधान किया जाता है ताकि वह वहां जाकर यीशु द्वारा उसके जीवन में हुए कार्य के विषय न बता सके (8:26)।

इस विशिष्ट स्थिति में, जिसमें यीशु तथा उसके शिष्य स्वयं को पाते हैं, इस तरह से चमत्कार का किया जाना शिष्यों के लिए निश्चय ही एक संकेत है कि उन्हें भी यीशु की ओर से दूसरे स्पर्श की आवश्यकता है। उन्होंने यीशु की अत्यधिक चमत्कारिक सामर्थ को देखा और उनके पास उसकी शिक्षाएँ भी थीं, परन्तु अभी भी बहुत कुछ ऐसा था जिसे वे नहीं देख पाए थे। यीशु ने उनसे कहा कि यद्यपि उनके '*कान हैं*' तौभी उन्हें सुनने की आवश्यकता है।

यीशु के बारे में यह जानने को कि वह कौन था तथा उसकी महान सामर्थ की प्रशंसा करने को उन्होंने बहुत कुछ सुन व देख रहा था। अब उन्हें यह जानने की आवश्यकता थी कि वह बहुतायत से चिन्ता करने तथा अपने लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ है। तौभी वे आधी चंगाई पाए व्यक्ति के समान थे और लोगों को अपने चारों ओर वृक्षों के समान चलता हुआ देख रहे थे।

जिन लोगों को 'दूसरा स्पर्श' नहीं मिलता वे यह देख नहीं पाते कि परमेश्वर प्रत्येक परिस्थिति में कितना पर्याप्त है। शिष्यों ने उस स्थिति को देखा था जिसमें यीशु ने हज़ारों को भोजन खिलाया था। कोई भी यीशु के वैसा ही पुन: कार्य करने की अपेक्षा कर सकता था। परन्तु जिन लोगों को 'दूसरा स्पर्श' नहीं मिलता (जिसमें वे स्पष्ट रूप से परमेश्वर के प्रबन्ध की महानता और बहुतायत को देखें), वे इस तरह से सोचते हैं कि जब परमेश्वर कुछ अद्भुत करता है-पांच हज़ार को भोजन कराने के समान-तो यह केवल 'किस्मत' की बात होती है और ऐसा दुबारा नहीं होता। यीशु अपने शिष्यों को यह बताना चाहता है कि अपने लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह **हमेशा** से ही बहुतायत के प्रबन्ध की योजना बनाता रहा है।

शिष्यों को **बहुतायत** के प्रबन्ध के लिए तैयार रहना था। यीशु के इच्छा करने से ही वहां टोकरियां उपलब्ध हो जाती हैं तथा उन टोकरियों में शेष बचे

भोजन के टुकड़े भरे होते हैं। वह कंजूसी से ऐसा नहीं करता है। वह बहुतायत से देता है।

जिस शिष्य को 'दूसरा स्पर्श' मिला होता है वह अपने लोगों के प्रति परमेश्वर की करुणा और चिन्ता को जानता है। इस तरह का शिष्य आसानी से दुखी नहीं होगा, परमेश्वर की देरी पर संघर्ष नहीं करेगा, कमी-घटी में कुड़कुड़ाएगा नहीं।

क्या हमें 'दूसरा स्पर्श' मिला है? यह जानना अद्‌भुत है कि यीशु करुणामयी है तथा हमें अनुग्रह देना और हमारी सहायता करना चाहता है। परन्तु 'दूसरे स्पर्श' के साथ हम इससे भी अधिक देखते हैं। प्रत्येक चीज़ को उचित रूप से देखते हैं। हम जान पाते हैं कि यीशु ने हमारे उत्तरदायित्व को कैसे लिया । हम देख पाते हैं कि वह कितना विश्वासयोग्य है! हम उसकी करुणा तथा हमारी सभी दुर्बलताओं के बावजूद बिना किसी शर्त पर हमारे ग्रहण किये जाने को देख पाते हैं। हम उसके बहुतायत के प्रबन्ध को देखते हैं। वह वो उद्धारकर्त्ता है जो अपने समय में तथा अपने तरीके से हमारे लिए बहुतायत के चमत्कार करता है। परन्तु वह ऐसा एक से अधिक बार करता है। वह सदा से ही एक बहुतायत का प्रबंधक रहा है। यदि परमेश्वर हमारी आंखों का स्पर्श करे तो हम चीज़ों को उचित रूप देख से पाएंगे। जो कुछ यीशु ने अपने शिष्यों के लिए किया, उस सबके बावजूद शिष्यों को यीशु की महानता और भलाई का तथा अपने लोगों के लिए उसके महान प्रबन्ध का सीमित ही ज्ञान था। उन्हें अधूरी चंगाई मिली थी। परमेश्वर के दूसरे स्पर्श को प्राप्त कर चीजों को वैसे ही देखने पर जैसी वे हैं, वे परिवर्तित मनुष्य बन जाएंगे। वे पूर्ण भरोसे के जीवन को प्राप्त करेंगे क्योंकि उन्होंने देख लिया है कि यीशु बहुतायत का प्रबन्ध करने में समर्थ है।

अध्याय 17

यीशु का मसीहा के रूप में प्रकाशन (मरकुस 8: 27-30)

मरकुस 8:27-30 मरकुस के सुसमाचार में निस्संदेह एक बहुत ही महत्वपूर्ण मोड़ है। यीशु अब हेरोदेस के शासन से बाहर यात्रा कर रहा था। वह अपने शिष्यों को कैसरिया फिलिप्पी लेकर जाता है (8:27 अ)।

1. **वह उन्हें उसमें एक व्यक्तिगत विश्वास रखने के लिए आमन्त्रित करता है।** वह उनसे पता लगाता है कि लोग उसके बारे क्या अनुमान लगाते हैं कि वह है(8:27ब 28)। परन्तु वास्तव में वे स्वयं उसके बारे में क्या सोचते हैं (8:29)? उन्हें केवल दूसरों की विचारधारा का ही अनुसरण नहीं करना है। यीशु के बारे में सामान्य विचारधारा कि वह कौन है, अनुपयुक्त हो सकती है। यीशु अनुमान लगाने से अधिक चाहता है। वह चाहता है कि उन्हें इस बात का निश्चित ज्ञान हो कि वह मसीह है। वह उन सब से पूछता है-पद 29 में 'तुम' शब्द बहुवचन में है-उनके विचार से वह कौन है। पतरस सभी शिष्यों की ओर से एक वक्ता के रूप में बोलता है। सभी सहमत हैं, कि यीशु ही मसीह,

मसीहा पुराने नियम की भविष्यद्वाणी का अभिषिक्त राजा है (8:29)। यीशु के बारे में जो कुछ उन्होंने कहा वह उसे स्वीकार करता है, परन्तु वह यह नहीं चाहता कि वे उसके मसीहा होने का प्रचार करें (8:30)। वे, जो यीशु को मसीहा के रूप में देखने के लिए आते हैं उन्हें स्वयं पर इस विश्वास के साथ आना है। यीशु के 'मसीहा' होने के बारे में किसी भी तरह की अपरिपक्व बातचीत केवल राजनैतिक उत्तेजना को ही उत्पन्न करेगी। यीशु वह नहीं है जैसा लोग उसके 'मसीहा' होने के बारे में सोचते हैं कि वह एक सिपाही-राजा है, जो रोमी शासन का अन्त करेगा।

इस स्थान पर पहुंचकर हमें उन विभिन्न स्थानों के बारे में एक विस्तृत जानकारी लेनी होगी जहां यीशु अपनी सेवकाई या मसीह होने के बारे में अपरिक्व प्रगटन नहीं चाहता है। अशुद्ध आत्माओं को यह बताने के लिए मना किया गया है कि वह कौन है, चाहे वह शांत रहने के द्वारा हो (देखें1:25, 34; 3 :12) या बाहर निकालने और कहीं और भेजने के द्वारा हो (देखें 5:7)। इसे समझना कठिन नहीं है। अशुद्ध आत्माओं की गवाही का कोई महत्व नहीं है। किसी को भी अशुद्ध अत्माओं की नहीं सुननी चाहिए, चाहे वे सच ही क्यों न बोल रही हों।

यीशु चंगे हुए लोगों से भी अपनी चंगाई के बारे में बताने को मना करता है (1: 44-45; 5: 43; 8: 26); यह वह निवेदन है जिसका अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए। पुन: यह देखने में कोई कठिनाई नहीं है कि यीशु ने इस तरह का निवेदन क्यों किया। उसकी इच्छा को न मानना उसे उच्च अधिकारियों के साथ कठिनाई में ले आया। यीशु को प्रसिद्ध होने तथा लोगों का ध्यान अपनी ओर करने की कोई जल्दी नहीं थी। कोई भी जिसने यीशु को मसीहा के रूप में कहना आरम्भ किया, वह भलाई के स्थान पर अत्यधिक हानि का कारण बना। यहूदी लोगों की मसीहा के संबन्ध में भ्रष्ट विचारधारा थी। उनके विचार से वह एक ऐसा राजा सिपाही होना चाहिए जो रोमी शासन को इस्राएल से हटा सके।

इसी कारण से यीशु ने अपने शिष्यों से कहा कि जो कुछ उन्होंने स्वयं इतनी धीमी गति से सीखा है उसके बारे में वे अपने बड़े मुख से मूर्खता पूर्वक कुछ भी प्रगट न करें (8:30; 9:9)। यह एक व्यावहारिक

आवश्यकता थी। यीशु प्रचलित मसीहा से स्वयं को परिचित नहीं कराना चाहता था।

2. शिष्यों को यीशु के मसीहा होने के संबन्ध में एक स्पष्ट विश्वास के साथ आना है। एक लम्बी अवधि के बाद अस्पष्ट रूप से उन्होंने जाना था कि यीशु मसीहा था (जैसा यूहन्ना का सुसमाचार विशेष रूप में गवाही देता है; देखें यूहन्ना 1:41, 49), परन्तु शिष्यों का विश्वास सबसे पहले अव्यवस्थित था। आरम्भिक दिनों में कुछ शिष्य ऐसे थे जिन पर यीशु को भरोसा था (यूहन्ना 2:24)।

मरकुस ने अपने पाठकों को जानने दिया कि यीशु, और मसीहा परमेश्वर का पुत्र है। सुसमाचार के आरम्भ में मरकुस ने पाठकों को बताया कि यीशु '*परमेश्वर का पुत्र*' *प्रभु*' है (1:1, 3)। परमेश्वर ने इसी चीज़ को स्वर्ग से यीशु के बपतिस्मे के अवसर पर कहा था (1:11)। अशुद्ध आत्माएँ उसको जानती थीं (1:24; 5:7) और यीशु ने स्वयं को '*मनुष्य का पुत्र*' कहा (2:10, 28) यद्यपि इस शीर्षक को बहुत पहले नहीं दिया गया था।

यीशु अपने बारे में प्रत्येक्ष रूप से कभी भी अधिक नहीं बोला। जो कुछ उसने किया जिस तरह उसने किया तथा जो कुछ उसने कहा-उसके सूक्ष्म तात्पर्य से उसके द्वारा किये गए दावों की पूर्त्ति हुई। किसी भी तरह के अपरिपक्व दावों के बिना ही उसकी सेवकाई ने बहुत कुछ कह दिया था। यूहन्ना ने कहा कि यीशु यूहन्ना की तुलना में 'अधिक सामर्थी' होंगा (1:7) और जैसे ही यीशु ने सेवकाई करना आरम्भ किया' यह सत्य हो गया। यीशु के पवित्रात्मा का बपतिस्मा लिये जाने से पहले ही (मरकुस 1:8, यूहन्ना द्वारा वर्णित) यीशु में निस्सन्देह अलौकिक सामर्थ थी। उसने शैतान पर जय प्राप्त की (1:12-13)। उसने परमेश्वर के राज्य की घोषणा की (1:14-15) और उसने स्वयं को अगुवाई की अवस्था में अप्रत्यक्ष रखा, जब उसने लोगों को अपना शिष्य होने के लिए बुलाया (1:16-20), उन्हें प्रेरित नाम देते हुए, उन्हें भेजते, हुए महान अधिकार के साथ उन्हें आज्ञाएं देते हुए।

उसके बाद यीशु की शिक्षाएँ आई। उसने अद्‌भुत अधिकार के साथ शिक्षा दी (1:22), और कई बार उसे 'शिक्षक' या 'रब्बी' कहा गया (4: 38; 9:5, 17, 38; 10, 20, 35, 51,11; 21:12:14,19, 32; 13:1;14:14)। वह

शिष्यता, परमेश्वर के राज्य, परम्परा और व्यवस्था के बारे में शिक्षा देता है, यदि यीशु दूसरों को 'मनुष्य के सिद्धान्त सिखाने के बारे में कहता है तो इसका अभिप्राय यह है कि वह स्वयं परमेश्वर के सिद्धान्तों को सिखाता है।

यीशु दुष्ट के क्षेत्र की महान सामर्थ को भी दिखाता है कि वह वो है जो शैतान से बलवान है तथा जो शैतान के बंघकों को स्वतन्त्र करता है।

यीशु स्वयं को जो उपाधि देता है उसकी तुलना में यीशु के दावों की पूर्ति उसमें अधिक होती है जो वह करता है। वह उस एक के समान शिक्षा देता और प्रचार करता है जो परमेश्वर को तथा परमेश्वर की इच्छा को घनिष्टता से तथा सही रूप में जानता है। वह दुष्टात्माओं और विनाश के प्रभु, के रूप में कार्य करता है। वह पापों को क्षमा करता है

प्रभु सब्त के प्रभु, मृत्यु और रोग पर प्रभु तथा आंधी और मौसम पर प्रभु

यीशु अपने लिए '*मनुष्य का पुत्र*' की उपधि का प्रयोग करता है (2:10, 28)। यह एक पर्यायवाची शीर्षक है जिसे "मैं" या ' इस व्यक्ति के रूप में आसानी से लिया जा सकता है-तौभी यह दानिय्येल 7:13 में गूंजता है तथा एक बड़े तरीके से प्रयोग किये जाने की इसकी संभावना है। शिष्य यीशु के लिए सबसे पहले '*शिक्षक या गुरू*' शीर्षक का प्रयोग करते थे (4:38)।

यीशु पर उसके उन रचनात्मक चमत्कारों पर विशेष ध्यान देने के निमंत्रण ने जिसमें उसने हज़ारों लोगों को भोजन खिलाया, शिष्यों को अन्ततः पहले से कहीं अधिक स्पष्ट रूप से यीशु के मसीहा होने को देखने में समर्थ किया। उनका मानना है कि यीशु परमेश्वर का अभिषिक्त, परमेश्वर का राजा, परमेश्वर का राजकीय पुत्र है।

अध्याय 18

क्रूस का प्रकाशन (मरकुस 8:31-9:1)

मरकुस 8:31 से 9:13 मरकुस के सुसमाचार का महत्वपूर्ण भाग है। यह आधे मार्ग के समान है और यह वह बिन्दु है जहां पर अन्ततः शिष्यों ने क्रूस पर यीशु के अद्‌भुत कार्य तथा व्यक्तित्व को पकड़ने में उन्नति करना आरम्भ किया।

1. जब वे यह देखने को आए कि वह कौन है, तब उन्हें यह देखने को तैयार रहना है कि वह क्या करेगा। जब यीशु स्पष्ट रूप से यह बताने की अवस्था में हैं कि वह कौन है, तो वे यीशु के अगले प्रकाशन के लिए तैयार हैं; वह अब उन्हें अपने क्रूस के बारे में बताता है।

   हमें इस बात का यहां एक दृढ़ संकेत मिलता है कि 'मनुष्य का पुत्र' अर्थ का इसके समानार्थक में 'मैं या' इस व्यक्ति के प्रयोग की तुलना में एक उच्च अर्थ है--यीशु ने स्वयं को 'मनुष्य का पुत्र' कहा (2:10,28), हो जाता है कि इसका 'मैं' या इस व्यक्ति की तुलना में अधिक महत्व है। 'मनुष्य का पुत्र' शीर्षक को

दानिय्येल के महिमायी दर्शन से लिया गया है। दानिय्येल अध्याय सातवें में कोई मनुष्य तुल्य परमेश्वर के निकट आकर राज्य को प्राप्त करता है। दानिय्येल 7:13 में 'मनुष्य का पुत्र' एक शीर्षक नहीं है परन्तु दानिय्येल अध्याय सात में देखे गए मानव रूप का चित्रण है।

इस वाक्यांश का अर्थ है 'एक मनुष्य'। यह वह वाक्यांश नहीं था जिसका प्रयोग यीशु के दिनों में अपेक्षित मसीह का उल्लेख करने को किया, गया था। यीशु ने इसका प्रयोग स्वयं के शीर्षक के लिए किया। वह बताता है कि परमेश्वर का पुत्र मरकुस 8:29 का मसीह 'मनुष्य का पुत्र' भी है। जोकि दानिय्येल सात का पूरक है। यीशु ने स्वयं को 'मनुष्य का पुत्र' कहा तथा उसके बाद इस शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया। पतरस ने जो कहा उसे लेते हुए वह बताता है कि 'मनुष्य का पुत्र' और 'मसीहा' एक व्यक्ति के लिए कहे गए हैं।

यह एक अद्‌भुत कथन है कि 'मनुष्य का पुत्र' के लिए अवश्य है कि वह दुख बहुत उठाए! दानिय्येल 7:13 में मनुष्य का पुत्र एक महान महिमा में स्वर्ग के बादलों पर सवार होकर परमेश्वर के पास राज्य को ग्रहण करने के लिए आता है। परन्तु यीशु कहते हैं, '*मनुष्य के पुत्र के लिए अवश्य है, कि वह बहुत दुख उठाए....*(8:31)। दानिय्येल 7 में किसी दुख का उल्लेख नहीं है। जो कुछ यीशु ने किया उसकी महिमा दानिय्येल 7 में तथा दुखों का चित्रण यशायाह 53 में मिलता है। दानिय्येल की महिमा को प्राप्त करने वाले को यशायाह 53 के दुखों को भी उठाना होगा।

2. **यीशु क्रूस की आवश्यकता पर बल देते हैं।** पतरस सोचता है कि यीशु ने ऐसा निराशा में होकर कहा है, इसीलिए वह यीशु को उसकी इस निराशा के लिये झिड़कता है (8:32)। परन्तु यीशु के क्रूस से बचने का कोई भी सुझाव केवल शैतान की ओर से ही आ सकता है (8:33)। इस तरह से सोचने में पतरस शैतान का एक उपकरण है तथा दुनियावी शब्दों पर विचार कर रहा है (8:33)।'

3. **यीशु उनके लिए क्रूस पर बल देता है। जो उसी तरह से महिमा को प्राप्त करना चाहते हैं** जो उसी तरह से महिमा को प्राप्त करना चाहते हैं जिस तरह से वह कर रहा है। वह एक निमंत्रण देता है कि यदि कोई

पीछे आना चाहे। यह क्रूस के साथ-साथ पुनरूत्थान, महिमा और आदर को प्राप्त करने का एक निमंत्रण है जिस तरह से यीशु क्रूस के साथ साथ पुनरूत्थान महिमा और आदर को प्राप्त करेगा।

यह एक व्यक्तिगत विषय है:

यह स्वयं कार्य करने का विषय है; यदि कोई ----चाहे

इस तरह की महिमा और आदर के लिए निम्न का होना ज़रूरी है: (1) आत्म-इनकार, पाप का परित्याग करना जोकि मानव हृदय से जुड़ा हुआ है,

(2) क्रूस की स्वीकृति -यीशु की क्रूस को ग्रहण करने की इच्छा (8:32 में पतरस के प्रतिकूल किसी भी तरह से तथा कूसित होने की स्वीकृति जिसे यीशु नये शिष्य पर डाले, और (3) यीशु के पीछे चलना, उसके साथ यात्रा करना, तथा उसके सेवकाई दल का एक भाग बनना। आधुनिक भाषा में इसका संबन्ध निम्न से है: जीवन का गंभीर पश्चाताप (2) परमेश्वर के अनुशासन के प्रति समर्पण और (3) परमेश्वर के राज्य में संबद्धता ।

यीशु अपने शिष्यों से इस माँग पर बल देता है। यह परमेश्वर से 'जीवन' प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग है (8:35)। यह अपने जीवन को वास्तविक अर्थ देने का एकमात्र तरीका है (8:36-37)। केवल यीशु को स्वीकार करनेवाले ही प्रतिफल प्राप्त करनेवाले दिन में यीशु द्वारा स्वीकार किये जाएंगे (8:38)। परमेश्वर के राज्य का आगमन जैसा कि कुछ सोचते हैं उसकी तुलना में शीघ्र ही होगा (9:1)। वहाँ खड़े कुछ लोग दशकों बाद भी जीवित रहेंगे, जबकि रोमी यरूशलेम में आएंगे। मरकुस दानिय्यल 7:13 के पूरा होने के विषय में बताता है। जिसका अस्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है क्योंकि यीशु ने 'मनुष्य का पुत्र' शब्द का प्रयोग किया है)। दानिय्येल 7 में मानव स्वरूप पिता **के** पास आता है (न कि पिता की ओर **से**) कि राज्य को ग्रहण करे। यीशु की मृत्यु के समय की घटनाओं में, चीज़े इस बात को प्रगट करेंगी कि यीशु ने पिता के पास 'आकर राज्य को' स्वीकार किया था। पुनरूत्थान, शिष्यों का फैल जाना, और विशेषकर यरूशलेम का पतन 'आने वाले राज्य' के रूप होंगे। (यीशु के पृथ्वी पर आने के लिए इस भाषा का

प्रयोग करना गलत है। अन्तिम न्याय में यीशु का आना केवल वही एक तरीका है जिसमें यह देखा गया है कि यीशु ने पिता के पास आकर अपने राज्य को ग्रहण किया है। बाइबल की भाषा में 'आने' का अभिप्राय एक से अधिक दिशा में है। मसीही कलीसिया की बाद की भाषा जब यीशु के आने के बारे में कहती है तो यह हमें शंका में डालने वाली न हो। यीशु का पिता के पास 'आना' एक पीढ़ी में हुआ। उसके पृथ्वी पर 'आने' की कोई तिथि नहीं है, '*उस घड़ी के बारे में कोई नही जानता--*' परन्तु पिता के पास आना तथा राज्य का प्रकाशन शीघ्र ही आरम्भ होगा, एक पीढ़ी में)।

यीशु का कहने का अर्थ यह है कि न्याय का दिन हमारे सोचने से कहीं अधिक निकट होगा। 30 ई. में जो लोग यीशु की वाणी सुनने के लिए खड़े हुए, उग्र दिनों से होकर जाएंगे। जब रोमी यरूशलेम की ओर जाएंगे तो कुछ भी उपस्थित होंगे। उस समय यीशु के शब्द उनके पास आएंगे: *एक व्यक्ति जीवन के बदले में क्या दे सकता है?* जो अपने जीवन को खोएगा वह उसे पाएगा: जो अपने जीवन को पकड़े रहेगा वह उसे खोएगा-विशेषकर सताव के दिनों में जो इस्राएल के लोगों के लिए होंगी। मुख्य विषय है: लेखा लेने का दिन हमारे सोचने से कहीं अधिक निकट है।

अध्याय 19

रूपान्तरण (मरकुस 9:2-13)

शिष्यों के यह पता चलने के पश्चात् कि यीशु ही मसीहा हैं (8:27-30) तथा उनका स्वयं को क्रूस के मार्ग का आह्वान देने पर (8:13-9:1) उन्हें विश्वास की एक पुष्टि दी गई है (9:2-13)।

1. **परमेश्वर की सच्चाई विश्वास से आती है, इस की महान पुष्टि।** यहूदी बिना किसी विश्वास के चिन्ह चाहते थे (देखें 8:11-13)। यह सामान्यता दूसरा तरीका है। विश्वास पहले आता है: उसके बाद परमेश्वर की पुष्टि आती है। शिष्यों के यीशु के विश्वास में बढ़ने के पश्चात् (8:27-30) परमेश्वर ने उनमें से कुछ को यीशु में महान ईश्वरीय महिमा को देखने का विशेषाधिकार दिया।

   रूपान्तरण शिष्यों के यीशु को मसीह स्वीकार करने के छह दिनों के पश्चात् हुआ (9:2)। 8:27-9:। तथा 9:2-13 की घटनाओं के बीच एक संयोजन है। शिष्यों को विश्वास करने से पूर्व पुष्टि के लिए अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी थी।

2. **महान विशेषाधिकार महान उत्तरदायित्व की तैयारी था।** यीशु पतरस, याकूब और यूहन्ना को अपने साथ

लेकर किसी एक पहाड़ पर गया (9:2)। स्पष्ट है कि पहाड़ दूर नहीं था और यह ऊँचा था (9:2)। ताबोर पर्वत एक पारम्परिक स्थान है परन्तु इस ज़रूरत के लिए वह पर्याप्त नहीं है। यह मैंदान से 350 मीटर ऊँचा था। तौभी यह इतना अधिक ऊँचा नहीं था तथा जोसेफस के अनुसार इसकी चोटी पर एक गढ़ था। संभव है कि यह पहाड़ हर्मन पहाड़ क्षेत्र में से एक था जो बहुत ऊंचा उठा हुआ था तथा कैसरिया के निकट था।

पहाड़ की चोटी की एकान्तता परमेश्वर के प्रकाशन को प्रगट करने का एक आदर्श स्थान होती है। हमें स्मरण आता है कि मूसा को एक पहाड़ की चोटी पर छह दिनों तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् एक प्रकाशन मिला था (निर्गमन 24:15)। केवल तीन ही शिष्यों को यीशु की महिमा को देखने का विशेषाधिकार मिला था। पतरस, याकूब और यूहन्ना की कलीसिया में महान ज़िम्मेंदारिया होंगी। उनमें से प्रत्येक अपने जीवनों में यीशु के लिए बाद में महान दुख उठाएगा।

3. **शिष्यों को ईश्वरीय महिमा को देखने का प्रतिफल दिया गया था।** पूर्व में, उन्होंने विश्वास किया कि यीशु ही मसीहा था, परन्तु इसके पश्चात् निश्चय ही यह विश्वास का विषय था। अब यह देखने का विषय है विश्वास पहले आता है: देखना बाद में। सर्वप्रथम मसीहियों को वह लेना है जो परमेश्वर भरोसे के बारे में कहता है; उसके बाद जिन चीज़ों पर उसने **विश्वास किया** वे **दर्शनीय** हो सकती हैं। यीशु के वस्त्रों से श्वेत रोशनी चमकने लगी और उसकी सफेदी इतनी उज्जवल थी कि संसार का कोई भी व्यक्ति इस तरह से उसे धो नहीं पाएगा (9:3)। यह ईश्वरीय महिमा थी। ईश्वरीय स्वरूप दर्शनीय हो रहा था, इसीलिए शिष्यों ने उस पुष्टि को प्राप्त किया जिस पर वे पहले से ही विश्वास कर चुके थे। यह 'मसीहा' (8:29)। को दैविक भी बताता है। पुराने नियम का भविष्यद्वाणी किया गया मसीहा एक ईश्वरीय मसीहा है।

4. **तीन शिष्यों ने इस पुष्टि को प्राप्त किया कि यीशु इस्राएल के धर्म-लेखों की पूर्ति था।** यीशु के साथ दो आकृतियाँ दिखाई दी: मूसा और एलिय्याह (9:4)। मूसा व्यवस्था का मध्यस्थ होने के कारण विख्यात था। एलिय्याह सभी भविष्यद्वक्ताओं में विख्यात था। मलाकी 4:5 में एलिय्याह की

वापसी की भविष्यद्वाणी की गई है। मूसा की व्यवस्था की भविष्यद्वाणी भी एक मूसा समान आकृति में की गई है जो परमेश्वर का एक सिद्ध वक्ता होगा (व्यवस्था-18:15,18)। पुराने नियम के भविष्यद्वक्ताओं की अवधि उस समय तक का केवल एक अन्तरिम माप था जब तक कि 'मूसा' समान महान भविष्यद्वक्ता प्रगट नहीं हो गए। शिष्यों को यह देखने की अनुमति दी गई कि मूसा, एलिय्याह और यीशु सहमत थे तथा एक सामंजस्य में थे। यीशु विश्व-इतिहास में परमेश्वर के उद्देश्य का पूरक था, एक ऐसा उद्देश्य जिसमें परमेश्वर ने पहले मूसा और एलिय्याह का प्रयोग किया था, जिसे मूसा की व्यवस्था तथा भविष्यद्वक्ताओं के लेखों में लिखा गया है।

5. **तीन शिष्यों की उपस्थिति ने यह सुनिश्चित किया कि परमेश्वर के राज्य की नई घटनाएं उसकी उपेक्षा नहीं करेगी जो कुछ परमेश्वर ने इस्राएल में किया है।** तीन प्रमुख प्रेरित इस्राएल के प्रति परमेश्वर के प्रकाशन की प्रामाणिकता पर संदेह करने के योग्य कभी न होंगे मसीही विश्वास पूर्व के संयोजन के बिना समस्त रूप से एक नया प्रकाशन नहीं होगा। अगुवों प्रेरितो को (घटनाओं की बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था पर) यह जानकारी देनी थी कि यीशु व्यवस्था और भविष्यवक्ताओं का पूरक था। कलीसिया के विकास में भूतकाल की किसी भी तरह से उपेक्षा नहीं होगी क्योंकि इस्राएल के इतिहास के आत्मिक दैत्य अभी भी थे तथा यीशु की सेवकाई में भी जुड़े रहे थे।

पतरस ने सोचा कि प्रति उत्तर में कुछ करने की आवश्यकता थी। '*इस पर पतरस ने कहा*' (9:5)। वह वहां होने के आनन्द में बोला (9:5), परन्तु वह उस अवसर को चिरकालिक ठहराव में बदलना चाहता था (9:6)। पतरस को इस तरह का अनुभव नहीं मिला था, वह नहीं जानता था कि इस तरह की चीज़ें संभव हैं।

6. **नाट्य अनुभव जल्दी ही बीत गया तथा भविष्य में इस तरह से महिमामयी नहीं होगा।** भूतकाल के दो महान नायक जल्द ही बादलों से ढक गए। परमेश्वर नहीं चाहता था कि मूसा और एलिय्याह शिष्यों की रुचि का कारण बने (9:7अ)। स्वर्ग से एक आवाज़ ने यीशु के ईश्वरीय पुत्र होने की पुष्टि की (9:7ब) शिष्यों को अब वह बताया गया जिसे

मरकुस रचित सुसमाचार के पाठक मरकुस 1:11 से जानते थे। इसी आवाज़ ने पहले भी यीशु के परमेश्वर का पुत्र होने की पुष्टि की थी (1:11)। अब वही आवाज़ तीनों शिष्यों को उसी आश्वासन को देती हैं (9:7 ब)। '*उसकी सुनो।*' यह वाक्यांश व्यवस्थाविवरण 18:15,19 से आया है। यीशु कलीसिया तथा मानवजाति के लिए परमेश्वर की अन्तिम वाणी है। अन्य सभी लुप्त हो जाते हैं। शिष्यों ने जो अनुभव प्राप्त किया था उन्हें उसे किसी और को बताने की अनुमति नहीं थी (9:8)।

नाट्य अनुभव प्राय: बताने के लिए नहीं होते हैं। तथा इस्राएल के लोगों को उस मसीहा के बारे में उत्तेजित होकर नहीं बढ़ाना है जिसे वे राजनैतिक रूप में समझते थे। जब यीशु को क्रूसित किया गया और वह जी उठा तो यीशु के मसीहा होने पर प्रचार करने में किसी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं हुई (9:9)। पतरस ने अपने लेख में इसका वर्णन किया है कि उसके साथ क्या हुआ था (देखें 2 पतरस 1:16-18)।

'पुनरूत्थान' के संदर्भ (9:10) को समझा नहीं गया था, जबकि यीशु पहले भी इसका वर्णन कर चुका था (8:31)। शिष्य एलिय्याह को देखकर अचरज में पड़ गए थे। मलाकी 4:5 के आधार पर, जैसा शास्त्री कहते थे उसकी पूर्ति का क्या हुआ? यीशु का जवाब है कि एलिय्याह पहले से ही आ चुका है *एलिय्याह सचमुच पहले आकर सब कुछ सुधारेगा* (9:12अ)। यीशु के आने के कुछ समय पूर्व कोई था जिसने आकर पुराने नियम के प्रचार को पुन:गठित किया; सामान्य लोगों को उस ओर लाते हुए जहाँ वे एलिय्याह समान भविष्यवक्ताओं के प्रचार के अधीन थे। यीशु युहन्ना बपतिमा देनेवाले का उल्लेख कर रहा है।

तो भी 'एलिय्याह' का यूहन्ना के व्यक्तित्व में आना एक महिमामयी व विजयी आगमन नहीं था। न ही यीशु का भविष्य पूर्ण रूप से विजयी था। परन्तु मनुष्य के पुत्र के विषय में यह क्यों लिखा है कि वह बहुत दुख उठाएगा, और तुच्छ गिना जाएगा (9:12ब)। उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि मसीहा का महिमामयी आगमन निकट ही था। यह भविष्यवाणियां हुई थीं कि मसीहा दुख उठाएगा (देखें यशायाह 53:3)। यहून्ना बपतिस्मा देने वाले के लिए भी किसी तरह की विजय व महिमा नहीं थी। परन्तु मैं तुम से कहता

हूँ कि एलिय्याह तो आ चुका और जैसा उसके विषय में लिखा है, उन्होंने जो कुछ चाहा उसके साथ किया । पुराने नियम की भविष्यवाणी ने सावधान किया कि वही एलिय्याह न्याय को लेकर आएगा (मलाकी 4:6)। इसका अर्थ है कि उसका तिरस्कार होगा।

मुख्य विषय है: यीशु की महिमा केवल एक उत्तेजना है। इससे पूर्व कि वे यीशु को फिर से महिमा में देखें; अत्यधिक व्यावहारिक कार्य को किया जाना तथा दुख उठाना बाकी है। मनुष्य का पुत्र अवश्य ही दुख उठाएगा। 'एलिय्याह'-यहून्ना बपतिस्मा देनेवाले को भी दुख उठाना था। महिमा के मार्ग में दुख पहले आते हैं और उन्हें यही जानना ज़रूरी है।

अध्याय 20

निरन्तर प्रार्थना करने की शक्ति
(9:14-29)

शिष्य अपने जीवन के इस महान अनुभव से नीचे आए। उन्होंने सीखा कि यीशु कौन है, और उन्हें बताया गया कि उसके साथ क्या होगा। उन्हें उसकी ईश्वरीयता का अनुभव प्राप्त हुआ। परन्तु जब वे नीचे ठहरे शिष्यों के पास उतरे तो उन्होंने एक कठिन स्थिति को पाया जिसे अन्य शिष्य संचालित करने में समर्थ नहीं थे।

1. **व्यवहारिक चुनौतियों के बाद ही महान विशेषाधिकार आते हैं।** तीनों शिष्य रूपान्तरण के पर्वत पर अधिक समय तक रहना चाहते थे, परन्तु यीशु ने ऐसा करने की अनुमति नहीं दी, और उन्हें सामान्य जीवन की ओर वापस लौटना था। पहाड़ की चोटी पर प्राप्त अनुभव नीचे की व्यवहारिक कठिनाईयों का सामना करने में उनको सहायक होना चाहिए था। परमेश्वर की महिमा को अपनी आंखों से देखने से क्या लाभ यदि हम तब भी आवश्यकता में पड़े लोगों के लिए कुछ भी करने में समर्थ न हों।

   उन्हें लोगों की एक बड़ी भीड़ मिली (9:14), जिसमें

यीशु के बैरी और व्यवस्था के शिक्षक भी शामिल थे (9:14)। लोग यीशु के अचानक आ जाने से अचरज में थे। उन्होंने तो यीशु के काफी समय तक न आने की अपेक्षा की थी (9:15)। जब मूसा एक विशेष अवसर पर सीनै पर्वत पर चढ़ा। तो वह वहां चालीस दिन तक ठहरा रहा। यीशु पहले दिन ऊपर गया और अगले दिन नीचे आ गया । उसके पर्वत पर चढ़ने से **पूर्व** कम से कम छह दिन की तैयारी हुई थी (देखें 9:2)।

यीशु ने पूछा कि क्या हो रहा है (9:16) और वह दुष्टात्मा से ग्रस्त होने के कई मामलों को देखता है जो अपवादस्वरूप प्रतीत होते हैं (9:17-18)। लोगों के अविश्वास के कारण कठिनाई उत्पन्न हुई (9:19अ)। यदि किसी ने लड़के की विश्वास से सेवा की होती तो उसे पहले ही छुड़ाया जा सकता था। यीशु लड़के की सहायता करना आरम्भ करता है। कई प्रश्नों को पूछने के बाद वह पाता है कि समस्या गंभीर तथा पुरानी है(9:19 ब 22)। शिष्यों से विपरित वह परमेश्वर की सहायता करने को तैयार व समर्थ है।

2. **दृढ़ विश्वास के लिए व्यावहारिक चुनौंतियां आवश्यक हो सकती हैं।** इस तरह की एक स्थिति में साहस तथा परमेश्वर में दृढ़ विश्वास की आवश्यकता होती है। लड़के का पिता विश्वास और संदेह का मिश्रण है। शिष्यों के पास अपने पुत्र को लाने हेतु उसका पर्याप्त विश्वास था, परन्तु शिष्यों के साथ उसका अनुभव निराशाजनक रहा था। उसे आशा थी कि यीशु उसके बेटे को चंगा करने में समर्थ है, परन्तु वह संदेह भी करता था। वह कहता है, *'मैं विश्वास करता हूँ मेरे अविश्वास का उपाय कर'* (9:23)।

   यीशु का सामना अविश्वासी विरोधियों शक्तिहीन शिष्यों और संदेही मित्रों से होता है। इस विशिष्ट समस्या में यीशु का सामना महान कठिनाईयों से होता है (9:19ब-22)। व्यक्ति में विश्वास है परन्तु उसके विश्वास को दृढ़ता ही आवश्यकता है और वह यह जानता है (9:23-24)। यीशु आत्मा को छोड़ने की आज्ञा देता है (9:25-26अ)। सर्वप्रथम परिणाम निराशाजनक होता है (9:26ब)। ऐसा लगता है कि लड़का मर गया है, परन्तु यीशु लड़के को उसकी मृत समान अवस्था से जिलाता है (9:27)!

कहानी का मुख्य विषय यह है कि कुछ परिस्थितियों में दृढ़ विश्वास की आवश्यकता होती है। परमेश्वर हमसे विश्वास से अधिक और कुछ नहीं मांगता। मानवजाति की दुष्टता की जड़ अविश्वास तथा परमेश्वर के वचन और परमेश्वर की शक्ति में संदेह करने से जुड़ी हुई है। शिष्यों के सम्मुख आने वाली यह समस्या बहुत बड़ी है। केवल परमेश्वर पर महान भरोसा ही किसी भी तरह की सहायता करने में समर्थ होगा।

3. **दृढ़ विश्वास प्रार्थना से आता है।** यीशु और शिष्यों के बीच की बातचीत से पता चलता है कि क्या हुआ होता है। '*हम उसे क्यों न निकाल सके*' उन्होंने पूछा (9:28)। यीशु ने जवाब दिया: '*यह जाति बिना प्रार्थना किसी और उपाय से निकल नहीं सकती*'(9:29)।

दुष्ट शक्तियाँ शक्ति में भिन्न होती हैं। कुछ स्थितियों के साथ आसानी से निपटा जाता है। सुसमाचार का सरल प्रचार दुर्बल दुष्टात्माओं को निकाल सकता है, परन्तु कुछ इस तरह की भी चीज़ें होती है जैसे यह जाति। दुष्टात्माएं प्रामाणिक रूप से शक्ति में भिन्न होती हैं, इससे पूर्व कि उनसे अधिकार का कोई शब्द कहा जाए। यीशु वास्तव में प्रार्थना नहीं करता बल्कि वह दुष्टात्मा को छोड़कर जाने की आज्ञा देता है तथा दुष्टात्मा यीशु की आज्ञा के आगे समर्पण कर देती है। यह स्मरण रखना होगा कि यीशु ने निकट के पहाड़ पर कुछ समय बिताया था। उस ऊँचे पहाड़ पर उसका जाने का उद्देश्य एकान्तता को प्राप्त करना था। वह परमेश्वर को ढूंढने तथा उसके प्रकाशन को प्राप्त करने में समर्थ होना चाहता था। यीशु **पहले से** ही पर्याप्त रूप से एक प्रार्थना करने वाला व्यक्ति था। वह पहाड़ की चोटी पर रहा था तथा आज्ञा के ऐसे शब्द को देने में समर्थ था जिसका पालन दुष्टात्मा तत्काल ही करती। शिष्य इस संबन्ध में यीशु से कमज़ोर थे। जब दुष्टात्माग्रस्त लड़के को उनके पास लाया गया, वे पर्याप्त रूप से प्रार्थना करने वाले व्यक्ति नहीं थे और न ही उनमें इतना विश्वास था कि आज्ञा का ऐसा शब्द कहते जिसका पालन दुष्टात्मा करती।

अत: यीशु उनकी सहायता करना चाहता है। *यह जाति बिना प्रार्थना किसी और उपाय से निकल नहीं सकती* मसीहियों द्वारा सामना की जाने वाले चुनौतियों की विविध कठिनाईयां होती हैं। उनमें से कुछ से आसानी से निपटा

जाता है। एक छोटा ज्ञान, एक छोटा विश्वास, एक छोटी प्रार्थना-और समस्या चली जाती है। तो भी अन्य परिस्थितियां अधिक गंभीर होती है। संभवत: समस्या कई वर्षों की हो सकती है (जैसा 9:21 बताता है)। लक्षण बहुत बड़े हो सकते हैं(देखें 9:18-20ब, 22)। दुष्टात्मा केवल हिंसा का प्रदर्शन करते हुए समर्पण कर सकती हैं (9:26)।

इस तरह की स्थिति में जिस चीज़ की आवश्यकता है वह महान विश्वास तथा महान रूप प्रार्थनामयी **में** होने का **पूर्व** इतिहास है। तीन शिष्यों को अपने जीवनों का महान अनुभव प्राप्त हुआ था, उन्होंने अपनी आंखों से परमेश्वर के पुत्र यीशु की उज्जवल ईश्वरीय महिमा को देखा था। परन्तु यह महान अनुभव उनके साथ कोई भलाई तब तक नहीं करेगा जब तक कि यह उन्हें विश्वास और प्रार्थना के जीवन में लेकर न जाए। ईश्वरीय महिमा का अनुभव उनके लिए एक सरल सा प्रोत्साहन है।

उन्हें अभी भी जीवन की महान चुनौतियों का सामना करना होगा और उन्हें उस तरह के व्यक्ति बनने की आवश्यकता होगी जो अपने उद्धारकर्त्ता को पसन्द करते तथा परमेश्वर के साथ समय बिताते हैं।

अन्तिम टिप्पणी

किंग जेम्स संस्करण में 'और उपवास' को जोड़ा गया है परन्तु ये शब्द उस समय के बहुत बाद जोड़े गए थे जब तपस्या कलीसिया में विख्यात होती जा रही थी। बाद की शताब्दियों के शास्त्रियों की प्रवृत्ति उपवास के संदर्भो को जोड़ने की थी।

अध्याय 21

महानता का प्रस्ताव
(मरकुस 9:30-50)

यीशु ने अपने जीवन की इस अवस्था में यात्रा करना जारी रखा। वह अब हेरोदेस तथा फरीसियों की कोई परवाह नहीं कर रहा है(9:30)। वह अपनी मृत्यु तथा पुनरूत्थान के बारे में दूसरी भविष्यवाणी करता है (9:31), परन्तु शिष्य इसे समझ नहीं पाते (9:32)। वास्तव में यीशु और उसके शिष्यों के बीच में एक गंभीर असहमति है। उन्हें यह स्वीकार कराया गया है कि अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी में वह आशा से अधिक निराशावादी है, वे उससे प्रश्न करने से डरते हैं क्योंकि इससे वह नाराज़ होगा। एक बार पहले पतरस को यीशु ने 'शैतान' कहा था। यीशु एक स्नेही व्यक्ति था और वे उससे इसके अर्थ को पूछ सकते थे, परन्तु वे डरते थे कि पता नहीं वह क्या कहेगा।

यात्रा करते समय वे महानता पर विचार-विमर्श करते रहे (9:33-34)। उन्हें परमेश्वर के आने वाले राज्य में महत्वपूर्ण लोग बनना है। यीशु द्वारा अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी किये जाने के बावजूद वे यह मानते हैं कि यीशु निराशावादी हैं और वे यरूशलेम की यात्रा एक

शक्तिशाली व महिमामयी राज्य की स्थापना के लिए कर रहे हैं, जो रोमियों की अधिकार करने वाली सामर्थ को हमेशा के लिए निकाल देगा।

वे यह स्वीकार करना नहीं चाहते कि वे महानता के बारे में विवाद कर रहे हैं (9:34-4)। अधिकांश लोग दूसरों की दृष्टि में महान बनना पसंद करते हैं, परन्तु वे यह स्वीकार नहीं करना चाहते कि वे महान बनना चाहते हैं। उनके लिए यह स्वीकार करना अपमानजनक होगा कि वे दूसरों से प्रशंसा चाहते हैं।

यीशु उन्हें परमेश्वर के राज्य में कुछ महान चीज़ें सिखाने का सुअवसर देता है। परमेश्वर के राज्य में महानता परमेश्वर के राज्य की महानता से विपरीत है (9:35)। महानता को हमें दिया गया है! यह व्यक्तियों के पास आती है (*'कोई भी--'*), यह व्यक्ति जो चाहता है उस बात का विषय है कि व्यक्ति क्या चाहता है जो कोई चाहता है जो कोई इच्छा करता है--,।

1. **महानता का संबन्ध किसी भी तरह से अपमानित होने से जुड़ा होगा।** *'जो प्रथम होना चाहते हैं वे अन्तिम होंगे'* किसी तरह से परमेश्वर उस व्यक्ति के जीवन में कार्य करेगा और वह स्वयं को सबसे अन्तिम पाएगा। पौलुस ने कहा कि *'उसने सब वस्तुओं की हानि उठाई'* (फिलिप्पियों 3:8)। उसे उस प्रत्येक चीज़ से वंचित कर दिया गया जो उसे घमण्डी बना सकती थी। उस किसी भी चीज़ पर फूलने से इन्कार करना महानता होगी जिस पर स्त्री और पुरुष घमण्ड करते हैं।
2. **महानता दूसरों की सेवा करने से जुड़ी होगी।** *'जो कोई प्रथम होना चाहता है सब का दास बने'*। इसका अनिवार्य रूप से अर्थ यह नहीं है कि आपको क्या करना है, परन्तु इसका अर्थ यह है कि आपके जीवन जीने का तरीका ऐसा हो जो दूसरों को आशीष देने वाला हो। कोई भी 'सब का दास ' बने बिना महान नहीं बन सकता।
3. **महानता निर्बलों के लिए सहानुभूति रखने से जुड़ी होगी।** यीशु ने एक बच्चे को लेकर उसे लोगों के बीच में खड़ा कर दिया। उसने उस बच्चे के प्रति बहुत स्नेह दिखाया (9:36), और कहा *'जो कोई मेरे नाम से ऐसे बालकों में से किसी एक को भी ग्रहण करता है वह मुझे ग्रहण करता है।'* महानता बच्चों को ग्रहण करने से जुड़ी होगी।

बच्चों पर प्राय: ध्यान नहीं दिया जाता है; वे निर्बलता के प्रतीक हैं। कुछ समय तक प्राय: उन पर ध्यान नहीं दिया जाता है। परमेश्वर के राज्य में महानता का संबन्ध उन लोगों को स्वीकार करने का रवैया रखने से है जो प्राय; तुच्छ जाने जाते और समाज में निर्बल होते हैं यदि कोई किसी सामर्थी या उच्च व्यक्ति को अपना मित्र होने के लिए चयन करता है तो इसमें उसकी कोई महानता नहीं। यदि कलीसिया चाहती है कि उच्च व सामर्थी लोगों ही उसके सदस्य बनें तो वह महान कलीसिया नहीं होगी।

यीशु विस्तृत रूप में इसके अर्थ को बताना आरम्भ करता है।

1. **महानता का संबन्ध विरोधी से स्वतन्त्रता 'प्राप्त करने से होगा (9:38-41)।** शिष्यों ने दुष्टात्माओं को निकालने की सेवकाई करने वाले एक व्यक्ति के बारे में सुना। यह स्पष्ट रूप से यीशु का एक सच्चा अनुयायी था और वह अपना काम यीशु के नाम में करता था। परन्तु वह बारह तथा उनके शिष्यों के घेरे से जुड़ा नहीं था। इससे यीशु को कोई परेशानी नहीं हुई। उसे ऐसा नहीं लगा कि उसे ऐसी प्रत्येक चीज़ पर अपने नियंत्रण को रखना है जो उसके नाम से हो रही हो। वह उस व्यक्ति को रोकना नहीं चाहता था (9:39)। वह एक मित्र बन सकता था (9:39-40)। यदि उसका कार्य सही था तो वह प्रतिफल पाने के योग्य था (9:41)।
2. **'महान' मसीही दूसरों को दुखी करने के खतरे से बचेंगे** (9:42)। परमेश्वर के लोगों को हानि पहुंचाने की तुलना में एक व्यक्ति के लिए अपनी अपरिपक्वता की हानि उठाना कहीं श्रेष्ठ होगा। सच्चे विश्वासी को दूसरों की आत्मिक हानि करने के कारण गंभीर दुखों का सामना करना पड़ सकता है। इस तरह का पाप करने से तो डूब मरना अच्छा है।
3. **'महान' मसीही धर्मपरायणता के मार्ग में आने वाली बाधाओं को गंभीरता से लेते हुए उन्हें स्वयं से अलग कर देते हैं।** 'यदि तेरा हाथ तुझे ठोकर खिलाए--*तो उसे काट डाल- यदि तेरी आँख तुझे ठोकर खिलाए तो उसे निकाल डाल* (9:43,45,47,9:44 और 46 में कुछ संदर्भ गलतियां हैं और उन पदों को सही अनुवाद के लिए छोड़ा गया है। वाक्यांश पद 48 में आता है परन्तु शास्त्रियों ने उसे पद 44 और 46 में

जोड़ दिया है)।

ये पद 'महानता' के विषय पर जारी रहते हैं। दूसरा वाक्यांश 'राज्य में प्रवेश करना' का प्रयोग किया गया है। 'राज्य में प्रवेश करना' का अर्थ यह नहीं कि 'शिष्य बनने के लिए प्रथम कदम लें'। इसके विपरित 9:33-37 का विचार जारी रहता है। 'राज्य में प्रवेश करना' का अर्थ है 'हमारे जीवनों में परमेश्वर की राजसी शक्ति के रूप में कार्य करने वाली आशिषों का अनुभव होना।' यह आरम्भिक उद्धार से **अधिक** है। हमारे जीवनों में हाथ, पांव तथा आंख उन चीज़ों के लिए आते हैं जो हमारे लिए बहुत बहुमूल्य हैं, परन्तु वे राज्य के हमारे अनुभव में हानि का कारण बन रहे हैं।

इस परिच्छेद में 'नरक में डाले जाने' का उल्लेख आग से उद्धार होने से है (जैसा पौलुस 1 कुरिंन्थियों 3:15 में बताता है),जहां परमेश्वर की आग विश्वासी को उसके प्रतिफल से वंचित कर देती है यदि उसने एक विद्रोही असंगत जीवन जीया है।

4. **'महान' मसीही अग्निमय दण्ड को गंभीरता से लेता है** (9:48)। इस परिच्छेद में 'नर्क' या गेहेना की चेतावनी आवश्यक रूप से अनन्त दण्ड की चेतावनी नहीं है। गेहेना शब्द का प्रयोग प्रथम शताब्दी ईस्वीं में परमेश्वर की ओर से अग्नि से शुद्ध किये जाने के रूप में किया जाता था। 'गेहेना' का प्रयोग 'आग से उद्धार पाने' के लिए भी हो सकता है या फिर ऐसे दण्ड के रूप में भी जिसे कभी उलटा नहीं जा सकता। निस्संदेह एक ऐसा दण्ड जिसमें *'हर एक जन आग से नमकीन किया जाएगा'* (9:49)। जो कि एक प्रतिवर्तित दण्ड की अपेक्षा शुद्धिकरण से जुड़ा हुआ है।
5. **'महान' मसीही जीवन में प्रेम और शुद्धता को सुरक्षित बनाए रखने की आवश्यकता को गंभीरता से लेता है।** यीशु नमक का प्रयोग कर चित्र भाषा का प्रयोग करता है। वह इसी शब्द का प्रयोग एक भिन्न विषय के लिए भी करता है: नमक रखने वाले मसीही ही हानि उठा सकते हैं (9:50अ)। किस दशा में मसीही 'नमकीन' -शुद्ध होने की अपेक्षा कर सकते हैं। आग द्वारा, यह इस जीवन में परमेश्वर के शुद्धिकरण से हो

सकता है। इस पर विश्वास करने का एक कारण यह है कि यह न्याय के दिन के बाद भी हो सकता है।

6. **'महान' मसीही प्रेम की आवश्यकता को गंभीरता से लेता है।** नमक शब्द का अगला प्रयोग पद 50 ब में किया गया है। यीशु शब्दों के साथ लगातार खेल रहे हैं। यहा नमक शब्द का वर्णन मसीही के साथ अच्छे संबन्ध रखने के रूप में किया गया है।

अन्तिम टिप्पणी

'थियोलोजियन डिक्शनरी ऑफ द न्यू टेस्टामेंट' अंक1 अर्डमेंन्स 1964, पृ. 657-658, प्रमाण के लिए। 'न मरने वाला कीड़ा' तथा 'न बुझने वाली आग' का प्रयोग संदर्भ में आग से उद्धार पाने के रूप में बताता है कि ये शब्द एक ऐसे दण्ड के विषय में बताते हैं जिसका कि तब तक अन्त नहीं होगा जब तक कि इसका कार्य पूरा न हो जाए।

अध्याय 22

तलाक, बच्चे, धन
(मरकुस 10:1-31)

मरकुस 10:1 में हम यीशु की सेवकाई के एक प्रमुख मोड़ पर आते हैं। यीशु यहूदिया के क्षेत्र में यात्रा करते हैं। यद्यपि यूहन्ना का सुसमाचार उन प्रमाणों को देता है कि यीशु यहूदी वर्ष के विभिन्न उत्सवों पर यरूशलेम में नियतकालिक दौरों पर गए। यीशु ने यहूदिया को अपनी सेवकाई का प्रमुख स्थान नहीं बनाया । यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले ने मरकुस 1:5 के अनुसार यहूदिया में रहनेवाले लोगों के बीच कार्य किया और यीशु ने मरकुस 1:9 के अनुसार स्वयं का यूहन्ना की सेवकाई से परिचय कराया। मरकुस अध्याय 7 में इसका एक हल्का सा संकेत मिलता है कि यीशु ने यहूदिया में कुछ समय बिताया, परन्तु यूहन्ना के पकड़े जाने के पश्चात, उसने यहूदिया को अपने कार्य का आधार नहीं बनाया। 1:14 बताता है कि '*वह गलील गया*' जो यह बताता है कि इससे पहले वह यहूदिया में था। अपनी सेवकाई के आरम्भ में भी उसने यहूदिया को अपनी सेवकाई का आधार नहीं बनाया, परन्तु अब वह यर्दन के पार यहूदिया में जाता है। शेष सुसमाचार यहूदिया में उसकी सेवकाई के बारे में बताता है।

यात्रा करते समय उसने अपने शिष्यों तथा भीड़ को अतिरिक्त शिक्षा दी (10:1), जिनमें तीन मुख्य विषय हैं- तलाक, (10:2-12)बच्चे, (10:113-16)और-धन (10:12-301)।

1) **तलाक**–यीशु से तलाक के बारे में पूछा जाता है (10:2)। वह इस सच्चाई का सामना करता है कि मूसा की व्यवस्था में इसकी अनुमति दी गई है 10:3-4 परन्तु वह कहता है कि इस्राएलियों के मन की कठोरता के कारण ही इस तरह की आज्ञा दी गई है 10:5अ। परमेश्वर का मूल और आदर्श मानदण्ड एक विवाह का था जो पति और पत्नी के बीच अलगाव की अनुमति नहीं देता (10:5ब-9)। एक निजी शब्द में अपने यीशु शिष्यों को आगे बताता है (10:12)। मरकुस निरुसन्देह अपने शिक्षा देने के विवरण में सामान्यीकरण लाता है जिसका वर्णन मरकुस द्वारा नहीं किया गया है (देखें 5:32,19:9)। और पौलुस कुछ समय के लिए (सही या गलत रूप में) अलगाव को स्वीकार करता है (यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वैवाहिक पाप 'अनन्त पाप नहीं है (देखें 3:28,29) इसे क्षमा किया जा सकता है।

मरकुस का विवरण इसे विस्तार में नहीं बताता है, परन्तु सामान्य व आदर्श आवश्यकता को देता है। तलाक एक गंभीर गलती है। यह व्यभिचार को बढ़ावा देता है। (यीशु व्यभिचार के विचार को विस्तृत करते हैं। मूसा की व्यवस्था में दूसरे की पत्नी को अपनाना पाप था। यीशु इस परिभाषा को विस्तृत रूप देता है)। स्थायी विवाह परमेश्वर के राज्य का आदर्श है।

2) **बच्चे**-जो लोग परमेश्वर के शासन की शक्तियों को अनुभव करने की अपेक्षा रखते हैं वे अपने बच्चों से प्रेम भी करेंगे। लोग बच्चों को यीशु के पास लाने लगे, परन्तु शिष्यों ने उनसे भेदभाव किया (10:13) । लेकिन बच्चों के साथ भेदभाव करना यीशु को क्रोधित करता है। वह उनसे संपर्क बनाना चाहता है। लोग भी बच्चों के समान हैं-जैसे लोग दुर्बलता, निर्भरता, और शक्तिहीनता में परमेश्वर की राजसी शक्ति को अनुभव करते हैं (10:14)। कोई भी जो बच्चों के साथ संबन्ध नहीं रखता या उनके साथ भेदभाव करता है, उनमें परमेश्वर का अनुभव प्राप्त

करने की कमी रहती है (10:15)। यीशु ने स्वयं उनके साथ प्रेमपूर्ण व स्नेहपूर्ण व्यवहार किया और विशेष रूप से उनके लिए प्रार्थना भी की (10:16)।

मसीहियों को बच्चों के समान होना चाहिए। कोई भी जो धीरज नहीं रखता या अपने ही तरीके से कार्य करना चाहता है, वह परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर पाता। परमेश्वर का राज्य व्यस्क, चालाक और धनी लोगों के लिए नहीं है। यह उन लोगों के लिए है जो ज़रूरतमन्द हैं तथा जिनका कोई स्तर व शक्ति नहीं है। जहां कहीं भी जातिवाद, जनजातीय संगठन और वर्गदंभ तथा धन व शिक्षा है-वहीं आयुवाद है–एक निश्चित आयु के लोगों के साथ भेदभाव, संभवत: या तो बूढ़ा या फिर बच्चों के विरुद्ध आयुवाद यीशु के लिए असहनीय है। मसीही को आयु की हर उस बाधा को पार करना होगा जिस तरह से वह अन्य बाधाओं को पार करता है। और यदि वह यीशु के निकट है तो वह यीशु के समान होगा और बच्चों की सराहना करेगा।

3) धन-एक व्यक्ति, यीशु के पास आकर 'अनन्त राज्य का अधिकारी' होने के बारे में प्रश्न करता है (10:17)। 'अधिकारी या वारिस' हमारे लिए अवश्य ही इस बात का संकेत हैं कि यह आरम्भिक उद्धार में आगे के बारे में केवल एक प्रश्न ही नहीं है। यह प्रश्न प्रेरित, 16:30 के समानान्तर नहीं है। यह 'अधिकारी' होने के बारे में जानकारी प्राप्त करता है उस जीवित परमेश्वर के बारे में इस तरह से कि एक व्यक्ति कैसे अनन्त जीवन की आशीषों की फसल को काटता है।

यीशु हमारे साथ सबसे पहले उस व्यक्ति द्वारा संबोधित किये गए तरीके से इस पर विचार-विमर्श करना चाहते हैं। वह भलाई के विचार में डूबा हुआ है। वह यीशु को 'उत्तम गुरू' कहता है परन्तु क्या वह जानता है कि वह क्या कर रहा है? क्या पुरुष और स्त्री वास्तव में अच्छे है? क्या इसके बहुत से प्रमाण नहीं हैं कि वे वास्तव में दुष्ट हैं- किसी भी तरह से यदि यीशु वास्तव में उत्तम है, तब वह(यीशु) कौन है? केवल परमेश्वर को पूर्ण तरह से 'उत्तम' कहा जा सकता है। मसीह के सुसमाचार में जवान व्यक्ति पूछता है मुझे कौन सा अच्छा कार्य करना चाहिए निस्सन्देह वास्तविक बातचीत कई घंटों की हुई होगी जिसे सुसमाचार में कुछ मिनटों का संक्षिप्त रूप दे दिया

गया है। भलाई के बारे में बोलने को बहुत कुछ है। भला होना और भला करना आरामी में मूल बातचीत से जुडे हुए थे। मत्ती विषय के एक रूप को लेता है, मरकुस विषय के दूसरे रूप को लेता है।

तब यीशु जवाब देता है: (1) युवा व्यक्ति को धर्मपरायणता के एक ऐसे स्तर पर जाना होगा जो मूसा की व्यवस्था से भी बड़ा हो (10:19-21), (2) युवा व्यक्ति को उस विशिष्ट ज़रूरत को पूरा करना होगा जिसे यीशु ने उस पर डाला है, और (3) युवा व्यक्ति को यीशु के साथ यात्रा करते हुए सेवकाई के लिए प्रशिक्षित हो उससे जुड़ना होगा।

यह सब करना उस व्यक्ति की अपेक्षा से कहीं अधिक था, और इसी कारण चला गया (10:22)। इस घटना के द्वारा यीशु कुछ चेतावनी देते हैं। ध न राज्य का अनुभव प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न करता है (10:23-25)। शिष्यों को यह अजीब लगा। 'किसका उद्धार हो सकता है उन्होंने पूछा (10:26)।' इस पद में 'उद्धार' का उल्लेख निस्संदेह अंतिम उद्धार के लिए किया गया है, वह समय जब पहले उद्धार पानेवाले अपने प्रतिफल को प्राप्त करेंगे। यह इस सच्चाई द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि वही प्रतिफल निस्संदेह 10:27-31,का विषय है। परमेश्वर धनी लोगों द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करने में सहायता कर सकता है (10:27)। वे शिष्य जिन्होंने यीशु का अनुसरण करने के लिए अपने बहुतायत की धन सामग्री को छोड़ दिया था, परमेश्वर से मुआवज़े को प्राप्त करेंगे (10:28-30)। परन्तु प्रतिफलों की वास्तविक नियुक्ति अचरज उत्पन्न करने वाली होगी (10:31)।

अध्याय 23

परमेश्वर के राज्य में महानता (मरकुस 10:32-52)

यीशु धीरे-धीरे यरूशलेम की ओर बढ़ रहे हैं। मरकुस बताता है कि यीशु उनसे आगे-आगे जा रहा था (10:32)। वह एक दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ आ रहा था। शिष्य कम उत्तेजना के साथ पीछे-पीछे आ रहे थे। यीशु अपनी मृत्यु तथा दुखों की भविष्यवाणी करता है (10:33-34)।

अपनी मृत्यु के बारे में भविष्यवाणी करने के साथ-साथ यीशु अपने शिष्यों को उन चीज़ों के बारे में शिक्षा देना जारी रखता है जिसकी उन्हें उसके राज्य के बारे में जानने हेतु आवश्यकता होगी।

उनमें से एक का ध्यान **राज्य में महानता पाने** की ओर था। याकूब और यूहन्ना राज्य में सम्मान का स्थान पाने की मांग करते हुए यीशु के पास पहुंचे (10:35-37)। यीशु ने महानता प्राप्त करने की उनकी अभिलाषा के कारण उन्हें डांटा नहीं परन्तु, उसने उन्हें सावधान किया कि इसके लिए उन्हें क्या करना होगा।

1. **महानता हमेशा दुखों से जुड़ी होगी।** यीशु दुख का प्याला पीने पर था। वह दुखों में डूबने ही वाला था

(10:38-39)। क्या वे ऐसा करने को तैयार हैं? स्पष्ट है कि यूहन्ना और याकूब की राज्य के बारे में गलत विचारधारा थी: वे मिलिट्री या राजनीति के बारे में सोच रहे थे।

2. **परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने पर महानता आएगी।** यीशु ने कहा, राज्य में स्थान देना उसका काम नहीं है (10:40)। परमेश्वर की अपने राज्य के लिए एक योजना है। वही एक है जो अपनी प्रभुसत्ता में यह योजना बनाता है कि लोग कहां होंगे और वे क्या करेंगे यदि हम उसके द्वारा हमारे लिए नियोजित स्थान को ग्रहण करेंगे तो हम महानता, को पाएगे। परमेश्वर के राज्य में कुछ लोग 'प्रधानमंत्री' तथा 'राष्ट्रपति' होंगे, परन्तु केवल परमेश्वर ही अपनी कलीसिया में उच्च और अगुवाई का स्थान देता है। यद्यपि यीशु भी जिसे चाहे उसका चयन नहीं कर सकता था। यीशु पिता की इच्छा के अनुसार ही नियुक्ति कर सकता था। हमारे जीवनों में परमेश्वर की योजना एक अनिवार्य चीज़ है। महानता उसकी खोज करने तथा उसके पीछे जाने पर आती है।

3. **आत्म-त्याग करने से महानता आती है।** याकूब और यूहन्ना के निवेदन को सुनकर शिष्य क्रोधित हो गए (10:41)। यीशु इस अवसर का प्रयोग एक शिक्षा देने के लिए करता है। लोग महानता के बारे में प्राय: जैसा सोचते हैं, परमेश्वर के राज्य में महानता उससे बहुत भिन्न है। सामान्यता लोग सोचते हैं कि अपने चारों ओर के लोगों पर अधिकारी होना ही महानता है (10:42), परन्तु परमेश्वर के राज्य में महानता दूसरों की सेवा करना, सच्चे उद्धार को प्राप्त करने में उनकी सहायता करना तथा परमेश्वर में सच्ची परिपूर्णता का होना है। यीशु इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। वह संसार के प्रायश्चित के लिए अपने जीवन को देने पर है। 'प्रायश्चित' एक ऐसा भुगतान है जिससे दास मुक्त हो जाता है। वह संसार को पाप और गुनाह के बंधन से छुड़ाने के लिए 'रक्षा-शुल्क' बनने पर है। वह इसे प्रत्येक के लिए करता है। इब्रानी में 'कई' का अर्थ 'प्रत्येक' से है। यीशु संपूर्ण संसार के लिए स्वयं को एक प्रायश्चित के बलिदान के रूप में चढ़ाने पर है। अपने मार्ग पर लगातार चलते हुए यीशु यरीहो पहुंचता है।

बरतिमाई की कहानी में मुख्य कुंजी उसका यह जानना है कि यीशु ही मसीहा, दाऊद का पुत्र है। यह एक अलग किस्म की अभिलाषा का उदाहरण

है, सांसारिक सम्मान पाने की अभिलाषा नहीं परन्तु अपने जीवन की आवश्यकता को यीशु द्वारा पूर्ण किये जाने की निश्चियता को रखना।

1. वह अपने सुअवसर को लेता है। यीशु के शहर से जाते हुए बरतिमाई यह दृढ़ निश्चय कर लेता है कि वह इस अवसर का प्रयोग अपने जीवन की सबसे बड़ी समस्या का जवाब पाने के लिए करेगा (10:46-47)।

2. **उसकी दृढ़ धारणा है कि यीशु ही मसीहा है।** अन्य बहुत से यीशु को 'दाऊद का पुत्र' कहकर नहीं पुकार रहे थे, परन्तु बरतिमाई ही ऐसा कर रहा था। वह जानता था कि यीशु कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है, वह पुराने नियम की भविष्यवाणी का दाऊद का पुत्र था। वह जो इस्राएल और संसार का उद्धार करने को आएगा।

3. **वह अपमानित या भयभीत होने से इन्कार करता है।** दूसरे उसे हतोत्साहित करते हैं, परन्तु वह हतोत्साहित होने से इंकार कर देता है (10:48)।

4. **वह जानता है कि उसे क्या चाहिए।** उसकी सबसे बड़ी इच्छा यही है कि उसकी इस विशिष्ट आवश्यकता का जवाब उसे मिले। अचानक यीशु रुककर बरतिमाई को बुलाता है (10:49)। वह तैयार है तथा बहुत समय से प्रतीक्षा कर रहा है। वह उछल कर खड़ा होता है (10:50)। वह वास्तव में जानता है कि उसे क्या चाहिए (10:51)। उसकी प्रार्थना का जवाब मिलता है और वह यीशु के शिष्यों में शामिल हो जाता है। वह अवश्य ही यीशु के साथ यरूशलेम भी गया होगा, क्योंकि मरकुस (जिसकी माँ यरूशलेम में रहती थी) उसके नाम को जानता था।

परमेश्वर की इच्छा में होकर महानता को ढूंढने के लिए, यह जानने को कि यीशु कौन है, कि हम क्या चाहते हैं कि वह हमारे लिए करे और हम उसके लिये क्या करना चाहते हैं-ये परमेश्वर के राज्य में महानता के रहस्य हैं।

अतिरिक्त टिप्पणी

इस कहानी के संबन्ध में सुसमाचारों में कुछ भिन्नता है। मत्ती 20:29-34 **दो** अंधे व्यक्तियों का उल्लेख उस समय में करता है जब यीशु यरीहो **से जा रहा था।** मरकुस बरतिमाई नामक **एक** अंधे व्यक्ति के बारे में बताता है

(10:46-52) जो यीशु के यरीहो से जाने पर चंगा हो जाता है। लूका 18:35-43 यीशु के यरीहो में **प्रवेश** करने को बताता है और उसके बाद **एक** अंधे व्यक्ति के चंगा होने के बारे में बताता है।

संख्या में भिन्नता का होना समस्या नहीं है। वहां दो व्यक्ति थे (जैसा कि उस समय वहां उपस्थित मत्ती बताता है), परन्तु उनमें से एक को कलीसिया के बाद के दिनों में बहुत अच्छी तरह से जाना गया। जिसे मरकुस नाम से जानता था तथा उसके बारे में कुछ विवरण भी देता है।

प्रवेश करने व वहां से जाने की उलझन कई संभावित व्याख्याएँ हैं। कुछ का सोचना है कि मत्ती और मरकुस **पुराने** यरीहो का उल्लेख कर रहे हैं परन्तु लूका का अभिप्राय **हेरोदियों** के यरीहो से है, और चंगाई इन दोनों में से ही किसी एक में हुई थी'।

मेरा मानना है कि लूका मरकुस में पाई जाने वाली सामग्री का ही अनुसरण कर रहा है, परन्तु उसने इसे अपने ढंग से संपादित किया है, यरीहो से संबन्धित अतिरिक्त जानकारी को शामिल करने के लिए।

मरकुस 10:46 बताता है, *'और वे यरीहो में आए'* और तब तत्काल ही कहता है, और *जब वह वहां से जा रहा था'* उसके पास यरीहो की एक ही कहानी है।

लूका 18:35 इसी सामग्री का प्रयोग करते हुए उसमें कुछ अधिक का भी समावेश करता है। लूका कहता है, 'जब वह यरीहो के निकट पहुंचा--' (जो कि बिलकुल मरकुस की जानकारी के अनुसार है) परन्तु वह आगे कहता है--', 'एक अन्धा सड़क के किनारे बैठा हुआ था।' दोनों की शब्दावली समान है। मरकुस बताता है कि यीशु यरीहो को आया परन्तु वह यीशु के शहर से **बाहर** जाने पर कुछ होने के विषय में बताता है।

लूका मरकुस के साथ साथ चलते हुए कहता है कि यीशु यरीहो **को** आया और उसके बाद वह कहानी सुनाते हुए बताता है कि वहां क्या हुआ था, परन्तु उसने कहानी को इतना संक्षिप्त कर दिया है (जैसा कि लूका मरकुस की सामग्री के साथ करता है) कि उसने इस वाक्यांश को छोड़ दिया '*जब वह जा रहा था*'। इसका अर्थ है कि लूका के संस्करण का सरल अर्थ

है '*और जब वे यरीहो के निकट पहुंचे--*'और वह कहानी को बिना किसी परेशानी के आगे बताता है कि यह इस तरह से हुआ मानो यीशु मार्ग में ही था। उसकी कहानी मरकुस के संस्करण को संक्षिप्त करती तथा हमें ऐसी कुछ चीज़ बताती है जो उसके यरीहो क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले हुई थी।

उसके ऐसा करने के पीछे एक अतिरिक्त कहानी है जिसमें यीशु कहता है '*आज मुझे तेरे घर में रहना अवश्य है--*' (लूका 19:1-10)। यीशु यरीहो से जाने का **विचार** कर रहा था, परन्तु जक्कई चुंगी निश्चय ही उस शहर में एक घर था। इसका अर्थ है कि यीशु यरीहो **वापस** गया (19:11-24)। इसी समय पर यरीहो में बताया गया एक दृष्टांत है, '*जब वे ये बाते सुन रहे थे*' (19:11)। मरकुस के प्रतिकूल लूका अनगिनत घटनाओं को बता रहा है जो यरीहो क्षेत्र में घटी। वह **ठीक-ठीक** यह बताना नहीं चाहता (19:1) कि यीशु यरीहो से जा रहा था। यीशु निश्चय ही मार्ग में था, परन्तु लूका एक कहानी के बारे में बताना चाहता है जोकि मरकुस के सुसमाचार में नहीं है जहां यीशु पुनः वापस जाता है। इसलिए वह मरकुस के वाक्यांश को छोड़ देता है '*जब वह जा रहा था*' और कहानी को सुनाता है कि मानों कोई चीज़ यीशु के पहले यरीहो में आने पर हुई थी।

इनमें से कोई भी चीज़ परेशान करने वाली नहीं है; यह पूर्ण रूप से महत्वहीन है। तो भी कुछ लोग पवित्रशास्त्र में विरोध अथवा प्रतिकूलता की खोज करते हैं। अंतः इसकी पुनः रचना करना कि क्या हुआ था, व्यर्थ है।

अध्याय 24

फल ढूंढना
(मरकुस 11:1-26)

मरकुस के सुसमाचार में सुनाई गई कहानी में यह रविवार का दिन है। यीशु को अब इस पृथ्वी ग्रह पर मनुष्य के रूप में छह दिनों तक ही रहना था। मरकुस 11:1 से 15:47 यीशु के पार्थिव जीवन के इस अन्तिम सप्ताह की कहानी को बताएगा।

यीशु अब स्वयं इस्राएल के राजा होने की घोषणा करता है, जोकि पुराने नियम की भविष्यवाणी की पूर्ति है (11:1-11)। यहाँ क्या हो रहा है? क्या यीशु एक गदही के बच्चे को ऋण पर लेने का प्रबन्ध करेगा? या यह कि यीशु को पिता द्वारा अलौकिक ज्ञान दिया गया है, और यह कि गाँव के एक विश्वासी को पहले से पिता द्वारा गदही के बच्चे को तैयार रखने का निर्देश दिया गया था? **रविवार** के दिन शिष्यों को आगे के गाँव में जाना था (11:2)। उन्हें एक गदही का बच्चा मिलेगा और उन्हें उस जानवर को लेकर आना होगा। यदि कोई उनसें प्रश्न करे तो उन्हें कहना है कि '*प्रभु को इसका प्रयोजन है*' (11:3)। यीशु इसे लौटाने की प्रतिज्ञा करता है। जैसा यीशु ने कहा था वैसा ही होता है

(11:4-6)। उन्होंने अपने कपड़े उस जानवर पर डाले (11:7अ) और जब यीशु उस पर सवार होकर यरुशलेम में निकला उन्होंने मार्ग में डालियाँ फैला दीं (11:7ब-8)। साधारण लोग 'होशाना' पुकार रहे थे, जिसका असल में अर्थ है 'कृपया बचा' परन्तु एक दूसरा अर्थ है 'परमेश्वर की स्तुति हो। वे पुकार-पुकार कर कह रहे थे कि यीशु प्रभु के नाम में आ रहा था, कि वह परमेश्वर के राज्य को ला रहा था, कि वह दाऊद का प्रतिज्ञा किया हुआ पुत्र था (11:9-10)। वह मन्दिर में गया और उसने चारों ओर देखा कि मन्दिर में क्या हो रहा था (11:11)। लोगों ने मन्दिर को लघु समय का व्यावसायिक केन्द्र बना लिया था कि अपनी सामग्री को बेचें। परन्तु उस समय यीशु ने कुछ नहीं किया । कार्य करने से पहले उसने निरीक्षण किया। उसी समय वह यह ठीक से बता देना चाहता था कि वह यरूशलेम में है (11:11)।

यीशु इस्राएल को परमेश्वर के प्रति फल हीन पाता है (11:12-14)। देश के धर्म का प्रमुख केन्द्र मन्दिर था। **सोमवार** की प्रातः मन्दिर की ओर जाते हुए यीशु को भूख लगी। वह एक अंजीर के वृक्ष के पास से गुजरा, जो हरा भरा था। यद्यपि अंजीर के वृक्ष पर इस समय पत्तों के लगने का मौसम नहीं था, इससे ऐसा प्रतीत होता था कि उस पर अंजीर अवश्य लगे होंगे। परन्तु पत्तों का होना भ्रम में डालने वाला था। यीशु अंजीर के वृक्ष को श्राप देता है। यह एक असाधारण कहानी है परन्तु इसे एक चमत्कारी दृष्टांत के रूप में समझा जा सकता है। इस्राएल अपने धार्मिक जीवन के बारे में बड़े-बड़े दावे करता है। वहां धार्मिक 'पत्तों' की भरपूरी है' इस्राएल संसार में परमेश्वर को प्रस्तुत करने हेतु स्वयं को परमेश्वर के लोग मानता है। वास्तव में यीशु जानता है कि उसे वहां कोई फल नहीं मिलेगा। उसके सभी धार्मिक दावों के बावजूद वह जानता है कि यरूशलेम जाने पर उसे विश्वास का जीवन देखने को नहीं मिलेगा।

यह चमत्कारिक दृष्टांत शिष्यों के लिए है। यीशु उन्हें बताना चाहता है कि परमेश्वर के प्रतिफल के बिना धर्म का प्रदर्शन वास्तव में परमेश्वर के श्राप के अन्तर्गत आता है।

यीशु मन्दिर को साफ करता है। वह तीन वर्ष पहले भी इसी चीज़ को कर चुका था। यीशु ने मन्दिर को पहले से ही देख लिया था। सोमवार के दिन

वह जानता था कि उसे क्या करना है। वह बलपूर्वक उन लघु-समय के व्यवसायियों को बाहर निकालता है जो मन्दिर का प्रयोग बाज़ार के रूप में कर रहे थे (11:15-16)। अब उसके पास समर्थन था। कुछ समय के लिए उसके साथ इस्राएल के मसीहा समान व्यवहार *किया गया था*, वह मन्दिर में जो चाहे कर सकता था। वह बलपूर्वक कहता है कि विश्वासी के जीवन का केन्द्र भ्रष्ट व्यवसाय नहीं परन्तु प्रार्थना है (11:17)।

कोई भी यह कल्पना कर सकता है कि इस्राएल के धार्मिक अगुवों को अपने मन्दिरों की इस तरह से सफाई किये जाने से कितनी प्रसन्नता हुई होगी, परन्तु वास्तव में यह उन घटनाओं में से एक घटना थी जिसने उन्हें यीशु से छुटकारा प्राप्त करने को उत्तेजित किया (11:18)। दिन की गतिविधि के *पश्चात* यीशु पुनः शहर की ओर लौटता है। वह यहूदी अगुवों द्वारा पकड़वाए जाने से बच रहा है। जब वह शहर के बाहर तीर्थयात्री शिविर में रह रहा है उस समय उसे पकड़ना अधिक कठिन था। वास्तव में वह बैतनिय्याह के एक घर में ठहरा हुआ था (जैसा हम यहून्ना के सुसमाचार से जानते हैं। उसे यहूदी अधिकारियों द्वारा आसानी से बन्दी नहीं बनाया जा सकता था।

अगले दिन **मंगलवार** को, यीशु पुनः शहर में प्रवेश कर रहा है जब शिष्यों ने *'सूखे अंजीर के वृक्ष'* पर ध्यान दिया (11:20-21)। यीशु इस अवसर का प्रयोग विश्वास के बारे में कुछ सिद्धान्तों को सिखाने के लिए करता है।

1). **परमेश्वर की विश्वासयोग्यता को थामे रखना।** पद 22 का अनुवाद प्रायः इस तरह से किया जाता है, *परमेश्वर पर विश्वास रखो* परन्तु अन्य अनुवाद है *परमेश्वर की विश्वासयोग्यता को थामे रखो।* ये दोनों एक ही चीज़ है। परमेश्वर पर विश्वास रखना एक समान है। तौभी मेरे विचार से मेरे द्वारा बताया गया अनुवाद इसे सही रूप में दिखाता है। विश्वास हमारे भीतर पाई जाने वाली किसी योग्यता पर कार्य करना नहीं है। लोग कहते हैं, कि आपको विश्वास रखना चाहिए, और बेशक वे सही कहते हैं। परन्तु ऐसा लगता है कि यह कोई गुण या योग्यता है जो हममें होनी चाहिए। नहीं, विश्वास कोई ऐसा गुण नहीं हैं जो हममें पाया जाए। विश्वास यह देखता है कि परमेश्वर विश्वासयोग्य है, विश्वास यह देखता

है कि परमेश्वर अपने वचन को पूरा करेगा। हम पूर्णतया उस किसी चीज़ के लिए उस पर निर्भर हो सकते है जिसे देने की प्रतिज्ञा उसने हम से की है। विश्वास-परमेश्वर की विश्वासयोग्यता को थामे रखना है।

2). **अपने आश्वासन के अन्तर्गत प्रार्थना करना।** पद 23 एक महत्वपूर्ण पद है। आइये इसे सावधानीपूर्वक देखें। आधी कलीसिया मरकुस 11:23 की अवहेलना करती हुई प्रतीत होती है, परन्तु शेष आधी कलीसिया इसका गलत प्रयोग करती प्रतीत होती है और इसका प्रयोग एक तकनीक के रूप में करती है जिसका प्रयोग हम परमेश्वर से कुछ भी प्राप्त करने के लिए कर सकें।

परन्तु मरकुस 11:23 किसी ऐसी चीज़ को लेने व दावा करने की तकनीक नहीं है जो हम परमेश्वर की ओर से पाना चाहते हों। जो लोग इस तरह की शिक्षा देते है वे वास्तव में उस किसी भी चीज़ को प्राप्त नहीं कर सकते जिसका वे नाम लेते या दावा करते हैं। वे पुनरुत्थित देह या नये स्वर्गों और नई पृथ्वी को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वे अपनी सभी इच्छाओं की पूर्ति तत्काल नहीं पा सकते तथा उनकी कुछ इच्छाओं की पूर्ति तो कभी नहीं होती। 'नाम लेना और दावा करना' प्रायः इस पद का प्रयोग अतिशयोक्तिपूर्ण किया जाता है जिसका अनुभव प्राप्त करना सत्य नहीं है और जैसा यह पद वास्तव में कहता है वह भी सत्य नहीं है।

मरकुस 11:23 कहता है: *''जो कोई इस पहाड़ से कहे, कि तू उखड़ जा और समुद्र में जा पड़ा।* और अपने मन में सन्देह न करे, वरन् प्रतीत करे कि जो कहता हूँ हो जाएगा तो उसके लिए वही होगा'' **यदि** कोई बोलने में समर्थ है तथा यह 'कहे उखड़ जा' और यह 'जो कोई' सन्देह न करे।

हमारे जीवन में ऐसे समय आते हैं जब हम परमेश्वर की इच्छा को जानते तथा उस विशिष्ट विजय पर बहुत ही भरोसे के साथ प्रार्थना करने में समर्थ होते हैं। हमेशा इस तरह से नहीं होता है *सभी तरह की प्रार्थना में* इस तरह का पूर्ण आश्वासन नहीं पाया जाता है। कई बार हम बिना यह जाने कि परमेश्वर की इच्छा क्या है, प्रार्थना करते रहते हैं। परन्तु यदि हम एक निश्चित आश्वासन उस बारे में जानते हैं जो होने वाला है तब हम प्रार्थना करने में समर्थ होते हैं-उस प्रार्थना का उत्तर अवश्य मिलेगा।

अध्याय 25

अधिकार का एक प्रश्न
(मरकुस 11:27-12:12)

यीशु द्वारा विक्रय करने वालों को मन्दिर से निकाले जाने के पश्चात् यरूशलेम के अधिकारी क्रोधित होकर यीशु को चुनौती देने लगे। परन्तु यीशु का विख्यात समर्थन महान होने के कारण वे उसे गिरफ्तार न कर सके। अगला कार्य उन्होंने उसके अधिकार को चुनौती देने तथा उसकी शिक्षाओं का खण्डन करने का किया। यीशु के पृथ्वी पर अन्तिम सप्ताह में **मंगलवार** प्रश्नों का दिन था।

सर्वप्रथम **यीशु के अधिकार से संबन्धित प्रश्न** आता है (11:27-37)। यरूशलेम के अगुवों का प्रश्न है: वह किस अधिकार से कार्य करता है और किसने उसे यह कार्य करने का अधिकार दिया है। यह एक अच्छा प्रश्न था। परन्तु उनके इस तरह से पूछने में निष्कपटता न थी, और उनकी इसके जवाब में भी कोई रुचि नहीं थी, यदि उन्हें एक सीधा सा जवाब भी दिया जाता तो वे उसका भी प्रयोग यीशु के विरोध में करते। कितनी ही बार स्त्रियाँ एवं पुरुष धार्मिक विषयों में रुचि लेने का ढोंग करते हैं, जबकि

वास्तव में उनकी रुचि केवल अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति में ही होती है।

यीशु उनके प्रश्न का जवाब इस तरह से देता है कि वह उसे जल्द ही समस्या में डालने वाला न बने। उसका उत्तर है: मेरा अधिकार यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के अधिकार के समान ही है, परन्तु यरूशलेम के अगुवे उसके इस जवाब के साथ कुछ भी न कर सके क्योंकि वे सार्वजनिक रूप में यूहन्ना के अधिकार को स्वीकार करना नहीं चाहते थे।

सच्चा अधिकार केवल परमेश्वर और पवित्र आत्मा की ओर से ही आता है। इस संसार के स्त्री पुरुषों के लिए अधिकार का संबन्ध राजनैतिक शक्ति या सामाजिक प्रतिष्ठा या बौद्धिक चतुराई से है। यीशु के दिनों में पेन्तिपुस पीलातुस, कैफा और यरूशलेम के बौद्धिक रूप से चतुर शास्त्रियों को अधिकार प्राप्त व्यक्तियों के रूप में सोचा जा सकता था। परन्तु वास्तव में परमेश्वर की चीज़ों में उनके पास कोई अधिकार न था। अधिकार आत्मिक सामर्थ का एक विषय है। यह पवित्रात्मा द्वारा अभिषेक किये जाने से आता है। यह आत्मिक समझ और आत्मिक शक्ति प्रदान करता है। यीशु का अधिकार स्वर्ग की ओर से था। उसे परमेश्वर की ओर से भेजा गया था और उस पर पवित्रात्मा की संभावित सामर्थ थी। यरूशलेम के अधिकारियों का प्रश्न अच्छा था, परन्तु उनकी अपने प्रश्न का जवाब जानने में कोई रुचि नहीं थी। दुष्ट 'किसानों' के दृष्टांत में (12:1-12), यीशु अपने अधिकार से संबन्धित इसी प्रश्न का जवाब दे रहा है कि यीशु कौन है?

1. **वह परमेश्वर के सभी सेवकों में महान है।** इस्राएल एक दाख की बारी के समान था। परमेश्वर एक अनुपस्थित स्वामी के समान है। वह कर्मियों को फल एकत्रित करने के लिए भेजता है, परन्तु कर्मियों को अस्वीकृत कर दिया गया। अन्त में वह अपने पुत्र को भेजता है जो उसके प्रति सबसे अधिक विश्वासयोग्य है। यीशु अपनी ही श्रेणी का है, परन्तु वह परमेश्वर की सेवा करने को आता है। वह उन भविष्यवक्ताओं तथा सेवकों की पंक्ति में है जिन्हें इस्राएल देश के इतिहास में वहाँ भेजा गया था।

   परमेश्वर लोगों में फलवन्तता को ढूंढ रहा है। उसने फलवन्त होने के लिए हमारे लिए बहुत कुछ का प्रबन्ध भी किया है। इस्राएल की कहानी में वह उन्हें छुटकारा देता है। उसने उन्हें अपनी व्यवस्था को दिया तथा

तम्बू में उनके लिए आराधना की एक प्रणाली का प्रबन्ध किया। कुछ समय पूर्व ही, इस्राएल के इतिहास में परमेश्वर ने उनके लिए यूहन्ना बपतिमा देनेवाले को भेजा था।

परमेश्वर ने अपनी दाख की बारी में बहुत सी चीज़ों की पूर्ति की है। अत: अब परमेश्वर का अधिकार है कि वह अपने लोगों के जीवनों में फल होने की अपेक्षा करे।

2. वह **परमेश्वर का पुत्र** है। परमेश्वर का यह अन्तिम दास एक ऐसी श्रेणी में आता है जो उसे अन्य सभी उन दासों से ऊपर रखती है जिन्हें उससे पूर्व भेजा गया था। वह स्वामी का पुत्र है। यहाँ यीशु परमेश्वर का अद्वितीय पुत्र होने का दावा कर रहा है। वह परमेश्वर का एक सेवक है तो भी वह परमेश्वर के दास की तुलना में उससे अधिक है।

3. वह वो है जिसकी **हत्या को निश्चित** किया गया है। यीशु द्वारा दिया गया दृष्टांत यीशु द्वारा अपनी मृत्यु के संबन्ध में दी गई भविष्यवाणियों की श्रेणी में आता है वह जानता है और वे भी जानते हैं कि उसके लिए क्या योजना बनाई गई है। यीशु जानता है कि वह मरने वाला है। उसने अपने बारे में पहले से ही कहा था, कि वह *बहुतों की छुड़ौती के लिए अपना प्राण* देगा (10:45)।

4. वह **परमेश्वर के न्यायदण्ड का मापदण्ड है।** यदि दाख की बारी का स्वामी वह सब देखे जो हुआ तब जिन चोरों और डाकुओं ने उत्पादन का गलत प्रयोग किया था, वह उन सबको नाश कर देगा। यीशु यहां यरूशलेम के विनाश के विषय बताता है जो एक पीढ़ी पश्चात् 70वीं ईस्वीं में हुआ।

5. वह वो **पत्थर है जिसे राजमिस्त्रियों ने तुच्छ जाना।** यीशु यशायाह (28:16) की भविष्यवाणी का उल्लेख कर रहा है। यह उन कुछ निर्माताओं अथवा राजमिस्त्रियों का चित्र है जो एक ईमारत का निर्माण कर रहे हैं तथा कोने पर एक बड़े पत्थर को लगाना चाहते हैं एक ऐसा पत्थर जो आधारशिला में सबसे बड़ा व सबसे महत्त्वपूर्ण हो। राजमिस्त्रियों को वह बड़ा पत्थर मिला परन्तु उन्होंने उसे तुच्छ जाना।

यीशु परमेश्वर का पत्थर है। वह उद्धार की आधारशिला है। वह वो उद्धारकर्त्ता है जिस पर हम अपने जीवनों का निर्माण कर सकते हैं। वह वो है जो जीवन में आने वाले तूफानों और बाढ़ में भी दृढ़ बना रहेगा। परन्तु 'राजमिस्त्री' वे लोग है जो स्वयं को धार्मिक विशेषज्ञ मानतें हैं 1वे परमेश्वर के सिद्ध और बहुमूल्य पत्थर को अस्वीकार देते हैं।

6. वह वो **पत्थर है जो कोने का सिरा (प्रमुख) बना।** यरूशलेम के धार्मिक अगुवों ने यीशु को अस्वीकार दिया, परन्तु परमेश्वर यीशु को कोने का सिरा बनाता है; उस इमारत का प्रमुख पत्थर जिसका वह निर्माण कर रहा है।

   यहूदी अगुवे उसे अस्वीकार रहे हैं; पिता उसे स्वीकार कर रहा है। यरूशलेम के अगुवे उससे जल्द ही पीछा छुड़ाने के विषय विचार कर रहे हैं। पिता जानता है कि क्रूस पर उसकी मृत्यु उसके अनन्तकाल के राज्य को स्थापित करेगी। अगुवों का सोचना है कि कुछ वर्षों बाद उसे भुला दिया जाएगा, पिता उसका प्रयोग पवित्रात्मा के उण्डेले जाने के लिए करेगा तथा उसके राज्य का कभी अन्त न होगा।

यीशु ने मरकुस 11:29 के एक प्रश्न का जवाब दिया। वे जानना चाहते थे कि उसका अधिकार क्या था। यीशु उन्हें दो जवाब देता है-एक अप्रत्यक्ष रूप में तथा दूसरा दृष्टांत में। परन्तु अब वे इसे पसंद नहीं करते । वे इसे समझ गए थे 12:12। उन्होंने यीशु के अधिकार की जानकारी लेने का ढोंग किया परन्तु उनके प्रश्न केवल उसके अधिकार को अस्वीकृत करने से संबन्धित थे, तो भी वे यीशु को पराजित न कर पाए। यीशु के पास परमेश्वर का अधिकार है, यह महत्त्व नहीं रखता कि वे क्या सोचते हैं।

अध्याय 26

प्रश्नों का एक दिन
(मरकुस 12:13-44)

यीशु के जीवन का अन्तिम मंगलवार प्रश्नों का दिन था। यहूदी अगुवे यीशु के अधिकार और शिक्षा को अपमानित करना चाहते थे, अत: उन्होंने सार्वजनिक रूप में इस तरह से प्रश्न किये जो यीशु को कठिनाई में डाल दें।

1. पहला प्रश्न **परमेश्वर और कैसर** के संबन्ध में था (12:13-17)। उसे फंसाने के लिए ही ऐसा किया गया था। मूसा की व्यवस्था के अनुसार इस्राएल के राजा का यहूदी होना ज़रूरी है। यदि यीशु कहता कि 'कर' कैसर को दिया जाए तो ऐसा कहकर वह मूसा की व्यवस्था का विरोध करता है। यदि यीशु कहता कि कैसर को 'कर' न दिया जाए तो ऐसा करके वह स्वयं को रोमियों की ओर से समस्या में डालता।

   यीशु ने कुछ ऐसा किया जैसा पहले कभी नहीं किया गया था। उसने 'कैसर के प्रति निष्ठा तथा परमेश्वर' के प्रति निष्ठा को विभाजित कर दिया **और** क्षेत्रों के रूप में उनसे व्यवहार किया। उसने कैसर के प्रति निष्ठावान बने रहने की संभावना को व्यक्त किया तौभी कैसर के

धर्म के प्रति निष्ठावान न बने रहने को भी। विचारधारा के इतिहास में यह पहला समय था कि किसी ने धर्म के बारे में बोलते हुए **दो** क्षेत्रों को बताया था । पहले की सामान्य विचारधारा यह थी कि कैसर को यह कहने का अधिकार दिया गया था कि किस परमेश्वर की आराधना की जानी चाहिए (दानिय्येल 3:1-30 में नबूकदनेस्सर को देखें)।

2. अगला प्रश्न **पुनरूत्थान** के संबन्ध में था (12:18-27)। यीशु के दिनों में विभिन्न धार्मिक समूहों में से सदूकी 'संदेहवादी' थे। उन्हें चमत्कारों पर विश्वास नहीं था और वे पुनरुत्थान के संबन्ध में भी सन्देहवादी ही थे। यीशु का जवाब (1) प्रखर रूप से पुष्टि करता है कि वे गलत हैं, (2) धर्मशास्त्र के प्रति उनकी अज्ञानता को अंकित करता है, (3) परमेश्वर की सामर्थ के प्रति उनकी अज्ञानता को, (4) वेदी के जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण को सही करता है, (5) अपने लोगों के प्रति परमेश्वर के पुनरूत्थान की विश्वासयोग्यता की विशेषता को बताता है।

   परमेश्वर ने कहा: '*मैं अब्राहम का परमेश्वर, इसहाक का परमेश्वर, और याकूब का परमेश्वर* हूँ।' यदि सदूकी सही थे तो अब्राहम, इसहाक और याकूब अपनी मृत्यु के साथ ही नष्ट हो गए थे। परन्तु परमेश्वर अभी भी उनके साथ एक संबन्ध का उल्लेख करता है। पुनरुत्थान में विश्वास करना एक साहस व निर्भीकता की चीज़ है। सदूकी अपने संदेह के नियंत्रण में थे, परन्तु यीशु का एक सर्वोच्च और महान दृष्टिकोण है। मृत्यु पश्चात् जीवन की आशा को परमेश्वर की विश्वासयोग्ता में रोपा गया है। परमेश्वर विश्वासयोग्य है, अपने लोगों के साथ उसका संबन्ध मृत्यु पश्चात् भी जारी रहता है। उनकी विश्वासयोग्यता इस बात की गारंटी देती है कि वह घुलनेवाली चीज़ को पुन:गठित करेगा और अपने लोगों के जीवन को पुन:स्थापित करेगा-और यीशु के लिए इसका अर्थ एक नई देह में जीवन का होना है।

   अब्राहम को दी गई कई प्रतिज्ञाएँ-कि वह सांसारिक क्षेत्रों का आनन्द उठाने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को भी प्राप्त करेगा-इसकी पूर्ति अब्राहम के जीवन में कभी नहीं हुई थी। यदि परमेश्वर अब्राहम के प्रति विश्वासयोग्य है तथा अब्राहम-इसहाक-और याकूब को दी गई प्रतिज्ञा

को सच में पूरा करेगा तो उसे उन्हें मृतकों में से जिलाना होगा। जो कोई अब्राहम को दी गई प्रतिज्ञाओं पर तथा परमेश्वर में विश्वास रखता है, वह पुनरुत्थित देह में 'जीवित' होगा, क्योंकि परमेश्वर उसके प्रति पूर्णतया विश्वासयोग्य है।

3. अलग प्रश्न **महान आज्ञा** के संबन्ध में था (12:28-34)। पहली और महान आज्ञा के बारे में एक प्रश्न किया गया। प्रश्न स्वीकारता है कि मूसा की व्यवस्था की आज्ञाएँ एक समान स्तर की नहीं हैं और इसलिए कुछ अन्यों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यीशु उन्हें यह दिखाता है कि एक राजनेता व सैनिक के रूप में मसीहा के संबंध में उनकी अपेक्षाएं गलत हैं। मसीहा वह है जिसकी आराधना दाऊद ने की। यीशु उन्हें एक श्रेष्ठ मन से आने का अवसर देता है, परन्तु उनकी इसमें रूचि नहीं है। अधिक रूपान्तरण के बिना मरकुस का सुसमाचार ('मत्ती के बाद लिखा गया लूका का सुसमाचार')

विस्तृत और रूपान्तरित

मत्ती की तुलना में

यदि कोई आरम्भिक मसीही टिप्पणियों **तथा** स्वयं सुसमाचारों से संबन्धित अध्ययन करे तो यह चित्र **दोनों** पर प्रेरित करने वाला हो सकता है। मरकुस की सामग्री मत्ती की तुलना में पुरानी और कम रूपान्तरित है तो भी मैं यह नहीं सोचता कि हम इस सच्चाई का प्रयोग इस पर तर्क करने के लिए कर सकते हैं कि मत्ती ने प्रत्यक्ष रूप में मरकुस से रूपान्तरण किया। मत्ती मारकन **सामग्री** का रूपान्तरण है, परन्तु संभवत: मरकुस का सुसमाचार नहीं, तौभी इससे कोई अधिक फर्क नहीं पड़ता। मरकुस का सुसमाचार पहले तीन सुसमाचारों में से सबसे अधिक 'मूलभूत' प्रतीत होता है। इस बात की ठीक-ठीकशृंखला कि यह कैसे हुआ संभवत: हम कभी जान नहीं पाएँगे। निस्संदेह यह एक बहुत ही जटिल विषय है।

कलीसिया एक चौगुने सुसमाचार की वारिस है तथा प्रत्येक पुस्तक पर पृथक रूप से विचार किया गया है। में मानता हूँ कि एक प्रचारक इस तरह से कह सकता है कि लूका मरकुस की सामग्री के बारे में जानता

था और वह इसे ले सकता था क्योंकि मत्ती के सुसमाचार में मरकुस के सुसमाचार से आई उसी तरह की सामग्री थी (जिसके बारे में कहा जा सकता है कि वह मरकुस से रूपान्तरित थी)

मत्ती का उद्देश्य मरकुस के उद्देश्य की तुलना में अधिक सुस्पष्ट है। मत्ती मरकुस की तुलना में एक मामले को अधिक स्पष्ट बना रहा है। मरकुस भी एक मामले को बना रहा है परन्तु मत्ती भी तुलना में यीशु के बारे में उसका कहानियों पर संचालन धर्मवैज्ञानिक रूप में झुका हुआ है। पुरानी धारणा कि मरकुस यीशु के बारे में ऐतिहासिक सच्चाईयाँ को सीधे रूप में देता है जैसा हम उन्हें ग्रहण करना पसंद भी करेंगे (1901 से)। मुझे मूलभुत रूप से सही प्रतीत होता है यद्यपि विलियम रेडे के दिनों से ही इसे महान चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

मरकुस की विरुद्ध सच्चाईयों में रुचि रही है। इसी कारण मत्ती की तुलना में उसके उद्देश्य को समझना कठिन हो जाता है। उसकी रुचि सच्चाईयों के एक विशेष रूप में प्रस्तुत करने की अपेक्षा उनमें अधिक थी। यद्यपि उसका सुसमाचार अन्यों की तुलना में छोटा है तो भी उसकी कहानियों को विस्तृत रूप में बताया गया है।

मत्ती के श्रोता यूहदी थे, परन्तु मरकुस के प्रमुख रूप से अन्यजाति थे। मसीही कलीसिया की आरम्भिक परम्पराएँ बताती हैं कि मरकुस पतरस का 'अनुवादक' व्याख्याता शिष्य 'सहकर्मी' था। यह बताता है कि मरकुस का सुसमाचार मसीहियों के लिए रोम में लिखा गया, और हम यह जानते हैं कि सुसमाचार इसमें सही बैठता है। मरकुस उन चीज़ों की व्याख्या करता है जो अन्यजातियों के लिए कठिन होंगी। मत्ती यहूदी रिवाज़ों की व्याख्या नहीं करता है। मरकुस करता है।

अन्तिम टिप्पणी

मेंने 'द इन्टरप्रिटेशन ऑफ मार्क' डब्ल्यू टेलफोर्ड, एसपीसीके 1985, पृ0. 3), और रेडे के '*मेसिएसगेमेंनिज़ इन डेन इवेंजेलिन*' (1901) से उद्धरित से किया गया है।

यह उन्हें दिखाता है कि एक राजनेता व सैनिक के रूप में मसीहा के संबन्ध में उनकी अपेक्षाएँ अनुपयुक्त है। मसीहा वह है जिसकी आराधना दाऊद ने की। यीशु उन्हें एक श्रेष्ठ मन से आने का अवसर देता है, परंतु उनकी इसमें रुचि नहीं है।

4. **विधवा की भेंट** की घटना इस विषय पर स्पष्ट रूप में आती है (12:41-44)। अपने सभी प्रश्नों के पश्चात् यहूदी अगुवे अब एक सच्ची धार्मिकता के निकट आते हैं। यीशु अपनी ओर संकेत करते हुए उन्हें उस तरीके को दिखाता है। इन धूर्त, विद्वेषी, धोखेबाज़, कपटी धर्म के यहूदी अगुवों के चित्र के साथ-साथ एक ऐसी घटना घटती है जो इसके बिलकुल विपरित है। धनी आराधक मन्दिर के भण्डार में बहुत सा धन डाल रहे हैं। ये भण्डार मन्दिर के भीतर दीवारों के चारों ओर बने हुए थे। एक गरीब विधवा उसमें दो दमड़ी डालती है (जिसका अर्थ मरकुस अन्यजाति पाठकों को बताता है), जो कि एक अधेले के बराबर है, जो मज़दूरों की एक दिन की मज़दूरी के 10 प्रतिशत से भी कम है। महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि उस गरीब स्त्री के पास ये दो सिक्के ही बचे थे। वह एक को भण्डार में डालकर दूसरे को अपने पास रख सकती थी।

यीशु अपने शिष्यों को अपने पास बुलाता है। वह इस घटना का प्रयोग उन्हें कुछ सिखाने के लिए करता है। बहुतायत में से देना सरल है। कई बार फरीसी तथा कपटी ऐसा अपने लाभ के लिए करते थे। परन्तु विधवा ने त्याग सहित दिया। यीशु पिता द्वारा उस स्त्री की परिस्थिति के बारे में अधिक से अधिक जानने में समर्थ हो सका। भेंट देने के पश्चात् उसके पास कुछ नहीं बचा था।

फरीसी और सदूकी चतुर थे और इस्राएल के धर्म के विद्वान थे। वे चतुराई से प्रश्न कर सके परन्तु सच्चा समर्पण उस स्त्री में था जो अपना सब कुछ परमेश्वर को दे देना चाहती थी।

अध्याय 27

इस्राएल का भविष्यवाणी किया गया पतन
(मरकुस 13:1-23)

इस्राएल परमेश्वर के प्रति फलहीन है परन्तु शिष्यों पर देश के आत्मिक जीवन में बांझ (फलहीन) होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, वे उन चमकते श्वेत पत्थरों के समान हैं जिन्हें हेरोदेस ने मन्दिर में लगाया है (13:1-2)।

1. **शिष्यों ने पवित्र इमारत की आवश्यकता से अधिक सराहना की** (13:1-2)। एज्रा के समय में जिस मन्दिर का निर्माण किया गया था वह एक छोटी ईमारत के रूप में था। यह प्रार्थना का एक केन्द्र था और यह उसका एक प्रतीक था जिसमें परमेश्वर को लहू के प्रायश्चित द्वारा पहुँचना था।

   मन्दिर को परमेश्वर ने सम्मान दिया था। यीशु ने इसे अपने पिता का घर (लूका 2:49) और सब जातियों के लिए प्रार्थना का घर (मरकुस 11:17) कहा था। और तो भी इसका कोई अस्तित्व न था। उस इमारत का क्या लाभ यदि उसका प्रयोग करने वाले लोग

परमेश्वर को न जानते हों। हेरोदेस ने मंदिर को विस्तृत करने में कई वर्ष बिताए परंतु ईमारतों के साथ उसकी तन्मयता का परमेश्वर के प्रेम के साथ कोई संयोग न था। हम प्राय: ईमारतों से प्रभावित हो जाते हैं। वे उपयोगी तो है परंतु अनिवार्य नहीं।

यीशु पवित्र इमारत से उतना प्रभावित नहीं हुआ था जितना कि शिष्य। वह उन्हें बताता है कि मन्दिर का पत्थर पर पत्थर न बचा रहेगा। वह यरूशलेम के विनाश की घोषणा कर रहा है जो 70 ईस्वीं में होने को था।

2. **शिष्य समय और चिन्ह के बारे में एक प्रश्न करते हैं** (13:3-4)। भविष्यवाणी द्वारा चौंके जाने के पश्चात् वे जल्द ही यीशु से एक प्रश्न करते हैं, *'ये बातें कब होंगी? और--उस समय का क्या चिन्ह होगा'* यह समय तथा उस एक विशेष चिन्ह के बारे में प्रश्न है जिससे शिष्य यह जान पाएँगे कि यरुशलेम का पतन कब होगा।

   लोगों की भविष्य के बारे में जानने की बड़ी इच्छा होती है। क्या होगा और कैसे होगा, इस बात की भविष्यवाणी में मानवजाति के प्रत्येक विभाग की रुचि है। लोग भविष्य को जानने के लिए अशुद्ध आत्माओं या जादू टोनों का सहारा लेते हैं। यीशु की शिक्षाओं से हमें कुछ भविष्यवाणियों के बारे में पता चलता है। परन्तु कई बार हम उससे भी अधिक जानने को उत्सुक रहते हैं जितना परमेश्वर हमें बताना चाहता है। इससे प्राय: इस तरह के प्रश्नों में रुचि उत्पन्न होती है कि भविष्य की घटनाओं के समय के चिन्ह क्या होंगे। शिष्यों के साथ भी ऐसा ही हुआ था।

3. **यीशु उन अभिघातज घटनाओं के बारे में बताता है जो यह प्रमाणित नहीं करतीं कि अन्त निकट है** (13:5-8)। यह आश्चर्य में डालने वाला है कि लोग प्राय: इन पदों को इस तरह से उद्धृत करते हैं मानों वे संसार के अन्त में हैं और मानों दूसरे आगमन के चिन्ह निकट हैं। वास्तव में, मरकुस 13 में दूर-दूर तक यीशु के दूसरे आगमन का वर्णन नहीं किया गया है, बल्कि केवल यरूशलेम के पतन का और 5-8 में आने वाले विषय संसार के अन्त के चिन्ह नहीं हैं, परन्तु वे घटनाएँ हैं जो कि अन्त के चिन्ह **नहीं** हैं।

   शिष्यों को उन लोगों द्वारा धोखा दिये जाने से सावधान रहना था जो *'अन्त समय'* के बारे में सब कुछ जानने का दावा करते हैं (13:5) और इसी तरह से हमें भी।

मसीहा होने के झूठे दावे अन्त के चिन्ह नहीं हैं (13:6)। यीशु ने कहा कि मसीहा होने का दावा करने को कई उठ खड़े होंगे; प्रेरित 8:9 हमें एक उदाहरण देता है। परन्तु इसे अन्त के एक चिन्ह के रूप में नहीं लेना है और झूठे मसीहा के आते ही अन्त शीघ्र ही नहीं होगा।

राजनैतिक उथल-पुथल अन्त का चिन्ह नहीं है (13:7-8 अ)। यीशु लड़ाईयों की चेतावनी देते हुए कहता है: 'परन्तु उस समय अन्त **न** *होगा।'* वह एक ऐसी सूची नहीं दे रहा है जो यह दिखाती हो कि संसार का अन्त निकट है। संसार के सम्पूर्ण इतिहास में लड़ाईयाँ हुईं, और लड़ाईयों की अफवाहें भी उड़ीं। वे यह प्रमाणित नहीं कर सकतीं कि संसार का अन्त निकट है। देशों के बीच जनजातीय आधार पर हिंसा होगी परन्तु इन चीज़ों को होता देख प्रेरितों को यह नहीं सोचना है कि उनका कार्य पूरा हो गया है तथा अन्त निकट है।

भुईडोल और अकाल अन्त का चिन्ह नहीं है (13: 8 ब)। जब यरूशलेम का विनाश हुआ, यीशु और 70 ईस्वीं की घटनाओं के बीच की अवधि में कई अकाल पड़े और भुईडोल आए। प्रेरित 11:28 के अकाल से सभी परिचित हैं। तो *भी* न तो संसार का अन्त हुआ और न ही उन समयों में यरूशलेम का पतन हुआ।

'यह तो पीड़ाओं का आरम्भ ही होगा।' इस वाक्य पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। 'चिन्ह' अन्त के चिन्ह नहीं हैं परन्तु आरम्भ के चिन्ह हैं। वे संसार के इतिहास में एक प्रमुख नई अवस्था का आरम्भ है। 33-70 ईस्वीं की घटनाओं में इतिहास की एक अवधि का अन्त हुआ। इन वर्षो में इस्राएल में जो चीज़ें होंगी, वे यरूशलेम के पतन का कारण होंगी, परन्तु यह शिष्यों के लिए सुसमाचार की एक नई अवधि का आरम्भ व विस्तार होगा। लोगों को 'अन्त के चिन्ह' पसंद हैं। जबकि आरम्भ के चिन्ह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

4. **यीशु चेतावनी देता है कि यरूशलेम के पतन के समय में प्रेरितों को चुनौतियों का सामना करना होगा** (13:9-13)। ऐसे समय होंगे जब

उन्हें बुरी तरह से सताया जाएगा और उन्हें शासकों को यीशु के बारे में बताने का अवसर मिलेगा। (13:9)। यरूशलेम के विनाश से पूर्व का समय सभी जातियों में पहुंचकर उमंग के साथ कार्य करने का समय होगा (13:10)। यदि संसार के अन्त तक पहुंचने का कोई चिन्ह है तो यह जातियों का सुसमाचार प्रचार है।

विशेष संकटों में पड़ने पर उन्हें बताया जाएगा कि क्या कहना है (13:11), परन्तु उन्हें अपने घनिष्ठ और प्रिय परिचितों से भी विश्वासघात की अपेक्षा करनी होगी (13:12)। उन्हें बड़ी घृणा का सामना करना होगा (13:13 अ) परन्तु जो स्थिर रहेंगे वे सुरक्षित रहेंगे और अपने अंतिम प्रतिफल को प्राप्त करेंगे (13:13 ब)। वास्तव में यरूशलेम के पतन में किसी भी मसीही का नाश नहीं होगा। यरूशलेम के मसीही पीरीया के पेला नामक स्थान में भाग जाएंगे (देखें *यूसेवियस सभोपदेशकीय इतिहास*, 3:5:3)।

5. **मन्दिर का घृणित अपवित्रीकरण यरूशलेम के शीघ्रगामी विनाश का चिन्ह होगा।** 'उजाड़ने वाली घृणित वस्तुएँ' दानिय्येल 9:27,11:31 और 12:11 से लिया गया एक वाक्यांश हैं। यह उस समय के लिए की गई एक भविष्यवाणी है जब अन्यजाति यरूशलेम में एक अतिपवित्र स्थान में प्रवेश करेंगी। यीशु इसमें जोड़ते हैं 'पढ़ने वाला समझ ले'। वह आग्रह कर रहा है कि शिष्य पुराने नियम को पढ़कर उसे समझे (मुझे) इस बात का संदेह है कि क्या यह लेखक **मरकुस** के शब्द हैं। ये मत्ती 24 में भी हैं और संभवत: यीशु के शब्द थे, जिसका विवरण मत्ती और मरकुस दोनों ने ही दिया है।

जब घृणित वस्तु को देखेंगे तो यह उसके (यीशु के) शब्दों की पूर्ति होना हैं कि उन्हें जान लेना है कि यरूशलेम का पतन होने वाला है, और उन्हें इससे बचने का कार्य करना है (13:14-16)। वास्तव में रोमी 'अपने प्रतीक मन्दिर में लाए-- और वहाँ उन्होंने उनके लिए बलिदान चढ़ाए, इतिहासकार जोसेफस ने इसे इस तरह --- से रखा है *यहूदियों का युद्ध* (6:6)। यीशु कहते हैं, उस समय यरूशलेम के लोगों को बहुत दुख अथवा संताप होगा (13:17)। प्ररितों को प्रार्थना करनी है कि विपत्ति का समय जाड़े का न हो

(13:18)। क्लेश बहुत बड़ा होगा (13:19), परन्तु परमेश्वर के चुने हुओं के कारण से छोटा किया जाएगा। यहूदी लोगों का पूरी तरह से नाश नहीं होगा क्योंकि संसार में उनके पास उद्धार का एक स्थान है। परमेश्वर के चुने हुओं के कारण भविष्य के इतिहास में, इस्राएल के लोगों को सुरक्षित रखा जाएगा (13:20)। यीशु विषय के इस पहलू पर कुछ अधिक बोलते हैं। (अतिरिक्त वाक्यांशों के लिए लूका 21:23, 24 देखें)। इसे हटा दिया गया था क्योंकि पौलुस को रोमियों 11:11-15, 25-32 में विषय को बढ़ाना था।

यरूशलेम के विनाश के समय से कुछ ही पहले यरूशलेम में कई झूठे दावे होंगे। संकट के दिन हमेशा झूठे भविष्यवक्ताओं को ऊँचा उठाते हैं, परन्तु उन्हें पूर्व चेतावनी दे दी गई है (13:21-23)।

अध्याय 28

मनुष्य के पुत्र का आगमन (मरकुस 13:24-37)

मरकुस 13:1-23 की प्रत्येक चीज़ यरूशलेम के पतन के बारे में बताती है। मरकुस 13:32-37 में यीशु अपने दूसरे आगमन के बारे में बताते हैं परन्तु इनके बीच के पदों का क्या हुआ? इस बारे में बाइबल विद्ववानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं, विशेष रूप से पद 30-32 के विषय में, *'जब तक ये सब बातें न हो लेंगी, तब तक यह लोग जाते न रहेंगे*--**परंतु** उस घड़ी के बारे में कोई नहीं जानता'।

कुछ के विचार से मरकुस 13:24-31 यीशु के दूसरे आगमन के विषय बताता है कि यीशु यह विचार करने में भूल कर रहे थे कि यह उनके अपने ही समय में होगा। कोई भी मसीही यीशु के इस दृष्टिकोण पर विश्वास नहीं कर सकता है।

कुछ के अनुसार 'यह लोग' इस्राएल के लोगों के संबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। ऐसा कहा जाता है कि जब तक ये चीज़ें न हो लें इस्राएल का अन्त न होगा। परन्तु 'यह लोग' का अर्थ यह नहीं है।

कुछ के विचार से पद 24-31 यीशु के दूसरे आगमन के विषय हैं परन्तु यीशु ने इस बारे में कोई भूल नहीं की कि उस एक पीढ़ी के साथ क्या होगा। व्याख्याकारों का कहना है कि पद 30 के अनुसार यीशु के समय में जिस चीज़ का **आरम्भ** हुआ वह निश्चय ही पूरी होगी। मेरे विचार से ये व्याख्याता पद 30 की व्याख्या सही नहीं कर पाए हैं।

कुछ का सोचना है-और मैं उनसे सहमत हूँ कि पद 24-31 यरूशलेम के पतन का वर्णन करते हैं।

मरकुस 13:24-31 यरूशलेम के पतन का वर्णन करते हैं, यीशु के दूसरे आगमन के पूर्वानुमान के आगमन के रूप में।

सर्वप्रथम सभी को यह जान लेना चाहिए कि '*मनुष्य के पुत्र का आगमन*' सदा यीशु के 'दूसरे आगमन' का उल्लेख नहीं करता है। दानिय्येल 7:13 में मनुष्य का पुत्र पिता **के** पास राज्य को ग्रहण करने के लिए आता है। अपने पुनरूत्थान और स्वर्गारोहण में यीशु परमेश्वर के पास आकर अपने राज्य को ग्रहण करता है। आत्मा का उण्डेला जाना, कलीसिया की उन्नति तथा यरूशलेम का पतन '*मनुष्य के पुत्र को बादलों में आते हुए*' देखने के तरीके हैं; जैसे दानिय्येल 7:13 को पूरा होते देखना।

मरकुस 13:24-25 की भाषा शाब्दिक नहीं है। यह पुराने नियम की भाषा शहर का पतन होने पर घटनाओं में होने वाले महान परिवर्तन के विषय बताती हैं। इस्राएल के शत्रुओं के पतन के लिए उपयोग की गई भाषा (यशायाह 13:10;34;4; यहेजकेल 32:7) अब स्वयं इस्राएल के लिए प्रयुक्त की गई है। इस तरह की घटनाएँ संसार का अन्त होने से पूर्व दर्शनीय रूप से हो सकती हैं (देखें लूका 23:44)। यीशु की उपस्थिति से पूर्व अन्त आने पर पृथ्वी नष्ट हो जाएगी (2 पतरस 3:12)। परन्तु उस समय संसार के अन्त की भाषा का प्रयोग नगरों और साम्राज्यों के पतन के लिए किया गया है। यहाँ यीशु ने इस्राएल के पतन का वर्णन एक विशेष अवस्था में किया है। मन्दिर का विनाश उस नये दिन का चिन्ह होगा जब उद्धार का संबन्ध एक यहूदी होने या मूसा की व्यवस्था से बंधे रहने से होगा।

यरूशलेम का पतन इस बात का प्रमाण है कि यीशु अपने राज्य में आया है। यीशु के बाद की पीढ़ी इसे स्वयं देखेगी, '*मनुष्य के पुत्र को--बादलों में आते*

देखेंगे' 13:26 यीशु के दूसरे आगमन के बारे में नहीं बताता बल्कि दानिय्येल 7:13 के पूरा होने के बारे में दानिय्येल 7:13 इस अवस्था में आकर पूरा होता है। यीशु पिता **के** पास राज्य को ग्रहण करने के लिए आया; यीशु ने बार-बार यह कहा कि यह उसकी पीढ़ी के समय में ही होगा (1) मत्ती 16:27, मरकुस 8:38, लूका 9:26; (2) मत्ती 10:23; (3) मत्ती 24:30; मरकुस 13:26; लूका 21:27; (4) मत्ती 26:64, मरकुस 14:62, लूका 22:69। मत्ती 26:64 इसके सत्य होने के बारे में कहता है *'अब से तुम'*, इसी तरह से लूका 21:27 भी करता है। मत्ती 28:18 का भी यही विचार है (दानिय्येल 7:14 को प्रतिध्वनित करते हुए); इसी तरह से मत्ती (19:28 में करता है। दानिय्येल 7:13-14 की पूर्ति (1)यीशु के पुनरूत्थान और स्वर्गारोहण में हुई जब वह पिता **के** पास अपने राजसी अधिकार को लेने के लिए आया। यह हुई (2) यरूशलेम के पतन में, जब एक कठोर न्याय को देखा गया जिसने यह प्रमाणित किया कि यीशु महिमा के सिंहासन पर बैठा हुआ था, और (3) यह यीशु के दर्शनीय 'दूसरे आगमन' में पूरी हुई। मरकुस 13:1-25 की प्रत्येक चीज़ यरूशलेम के पतन का उल्लेख करती है, इसी तरह से पद 26 भी करता है।

पद 27 संभव है कि सांसारिक 'दूतों' का उल्लेख सुसमाचार प्रचार करते हुए करता है 'स्वर्गदूतों' का अर्थ भी दूत ही है। यदि शाब्दिक रूप से स्वर्गदूतों से अभिप्राय है तो पुराने नियम की तरही फूंके जाने को स्मरण करना होगा जो परमेश्वर के लोगों की प्रगति में एक नई गति की घोषणा करने का तरीका था (देखें गिनती 10:2 जहाँ तुरहियों का प्रयोग यह घोषित करने के लिए किया जाता था कि इस्राएल को अपनी यात्रा में दूसरी अवस्था में जाना था, यशायाह 27:13 भी देखें, जहाँ तुरही का फूंका जाना एक महान छुटकारे का संकेत देता था)।

पद 28:31 बताते हैं कि इन घटनाओं को जल्द ही होना है, स्वयं प्रेरितों के दिनों में ही यह 'गर्मियों के समय' में ही होगा, एक ऐसा अच्छा समय जब बहुत कुछ होता है। कलीसिया की प्रथम पीढ़ियां महान विस्तार और आत्मिक सामर्थ के समय में थीं।

ये सभी बातें मिलकर स्पष्ट करती हैं कि पद 24-31 यरूशलेम के पतन का वर्णन करते हैं।

यीशु के क्रूस पर चढ़ाए जाने के चालीस वर्ष पश्चात् इस्राएल पर विशेष लोग होने की मुहर लगा दी गई कि संसार को प्रकाशमान करें। मूसा की व्यवस्था पर मुहर लगा दी गई। विशेष पवित्र दिन जैसे फसह का पर्व और प्रायश्चित का दिन इनकी अब परमेश्वर की ओर से कोई आवश्यकता न थी। परमेश्वर की राजसी सामर्थ को इस्राएल में से उठा लिया गया था। यरूशलेम नष्ट हो गया था।

पद 32-37 यीशु के द्वितीय आगमन का उल्लेख करते हैं। यीशु कहते हैं, **उस** "दिन के विषय कोई नहीं जानता" वह यरूशलेम के पतन की तुलना करता है जिसे कुछ शिष्य अपने जीवन में पूरा होते देखेंगे, यीशु के दूसरे आगमन के साथ जो पूर्णतया अनिश्चित था। इन प्रथम घटनाओं के होने का एक चिन्ह था-'उजाड़ने वाली घृणित वस्तुएँ' परन्तु दूसरी घटना के होने का कोई चिन्ह न था। यीशु का आगमन पूर्णतया अज्ञात समय का है।

यीशु के आगमन का दिन पूर्णतया अज्ञात है। कोई भी सामान्य व्यक्ति इसके बारे में नहीं जानता है। कोई स्वर्गदूत नहीं जानता। यहाँ तक कि यीशु भी जब इस पृथ्वी पर था वह भी इस बारे में नहीं जानता था कि उसके दूसरे आगमन का दिन कौन सा होगा।

यीशु के अन्तिम आगमन का दिन हमें जागते रहने व प्रार्थना करते रहने को प्रोत्साहित करता है। यीशु किसी भी समय में आ सकता है (एक या दूसरे तरीके से)। इसीलिए हमें उसकी मध्यस्थता के लिए किसी भी समय के लिए तैयार रहना है।

यीशु के अन्तिम आगमन के दिन में देरी हो सकती है। आरम्भिक कलीसिया सैद्धांतिक रूप से यह नहीं कहती कि यीशु का आगमन शीघ्र ही होगा। मरकुस 13:35 तथा अन्य प्रसंगों ने स्पष्ट रूप से सिखाया है कि इसमें देरी होगी। यह स्थिति उस गृह स्वामी के समान है जो अनिश्चितकाल के लिए कहीं जा रहा हो।

यीशु के अन्तिम आगमन का दिन हमारी सजगता की जाँच करने को है। यीशु निश्चय ही एक अपेक्षित समय में आएँगे। वह चाहते हैं कि जब वह आए हम उसके साथ जाने को तैयार पाए जाएँ, क्योंकि हम इस स्वीकृति से जुड़े हुए हैं कि वह किसी भी समय में आएँगे।

यीशु का अन्तिम शब्द 'जागते रहो' है हमें जागते रहने की आदत डालनी है। हमें उसके लिए तैयार रहने तथा इस बात की जाँच किये जाने की कि हम उसके प्रति कैसा जीवन बिता रहे हैं, हम उसके प्रति कितने विश्वासयोग्य हैं। नियमित रूप से अभ्यास करने की आदत डालनी है।

यीशु का आना कई तरीकों से हो सकता है। यदि यीशु का आगमन हमारे अनुभव के आधार पर नहीं होगा, तो उसका आगमन किसी दूसरे तरीके से हो सकता है। कई बार यीशु हमारे साथ कुछ ऐसा कर सकता है कि यह इस संसार का नहीं बल्कि हमारे संसार का अन्त होता है। वह हमें अपने साथ ले जाने के लिए भी आ सकता है। कई बार वह यह देखने का निर्णय लेता है कि हमारे जीवनों में क्या हो रहा है। वह अपनी खोज के अनुसार जाँच करने, प्रतिफल देने और दण्ड देने का निर्णय लेता है।

'जो मैं तुम से कहता हूँ वही सब से कहता हूँ, जागते रहो।'

अध्याय 29

क्रूस के तीन दृष्टिकोण
(मरकुस 14:1-11)

हमारी कहानी में यह यीशु के आखिरी सप्ताह का **बुध वार** का दिन है। पृथ्वी पर अड़तालीस घण्टों के काम का समय अब शेष रह गया है। उसने यरूशलेम से कम ही दूरी पर बैतनिय्याह में दिन बिताया।

1. हम देखते हैं **कि परमेश्वर ने क्रूस को कैसे देखा: यीशु की मृत्यु एक फसह का बलिदान है।** यीशु को फसह के पर्व पर क्रूसित किये जाने से बचाने का प्रयास किया जाता है (14:1-2)। तौभी यह परमेश्वर की योजना में था कि यीशु फसह के नमूने को पूरा करे। मूल कहानी में (निर्गमन 12: 1-3) फसह वह अवसर था जब लोगों का न्याय होना था जिसमें उनके पहलौंठों की मृत्यु हो जाएगी। परंतु इस्राएलियों के पहिलौठों की मृत्यु के बदले, एक मेमने को अपने पर प्राणदण्ड को लेते हुए मरना था। परिवार को अपने घरों को लहू से चिन्हित करना था। यदि वे इस तरह से लहू लगे निवास में जाएंगे तो न्याय उन पर नहीं आएगा

और वे बच जाएँगे। उसी समय से इस्राएल 'परमेश्वर की चुनी हुई जाति' कहलाएँगे।

परमेश्वर की योजना में था कि यीशु 'फसह का मेमना' हो। वह भी बलिदान का प्रतिस्थापन था। वह भी लोगों के पापों के लिए मारा गया था। उसके लहू में विश्वास करने के द्वारा ही उद्धार होगा।

याजक और शास्त्री यीशु से छुटकारा पाना चाहते थे, परन्तु वे फसह के पर्व के गुज़रने तक उसे बचाने का प्रयास कर रहे थे। वे चाहते थे कि चीज़ें जल्दी से हों। हमें मरकुस द्वारा यह देखने के लिए आमंत्रित किया गया है कि आगे क्या होता है। यीशु से छुटकारा पाने की योजना में देरी हो जाती है, पीलातुस भी सोचने के लिए अपेक्षा से अधिक समय लेता है। यीशु शुक्रवार के दिन उसी समय के लगभग मारा गया जिस समय मेंमनों का वध किया जाता था, आखिरकार वह फसह का मेमना था।

2. हम देखते है कि **एक स्त्री ने क्रूस को कैसे देखा। यीशु की मृत्यु महान सराहना की प्रेरक थी** (14:3-9)। यीशु ने तीन बार अपनी क्रूस की मृत्यु के बारे में स्पष्ट रूप से भविष्यवाणी की उसके शिष्य यीशु की बातों को गंभीरता से नहीं ले रहे थे और उनका सोचना था कि वह निराशा में है। *'हे प्रभु तेरे साथ ऐसा न हो'* पतरस ने कहा।

परन्तु वहाँ एक स्त्री थी जिसने उस पर विश्वास किया जो यीशु कह रहा था। वे बैतनिय्याह में किसी समय चंगे हुए एक कोढ़ी के घर में थे (14:3अ)। एक स्त्री ने वहाँ आकर यीशु पर अत्यंत मूल्यवान इत्र को उंडेल दिया (14:3ब)। यूहन्ना के सुसमाचार से हम जान पाते हैं कि यह बैतनिय्याह की मरियम थी (यूहन्ना 12:1-3)। उसकी बुरी तरह से आलोचना की गई थी (14:4-5), परन्तु यीशु ने उसका पक्ष लिया (14:6-9)।

उसने यीशु की आनेवाली मृत्यु पर विश्वास किया। यीशु ने कहा कि उसने उसके '*गाड़े जाने की तैयारी में*' उसका अभिषेक किया है। यह एक अद्‌भुत वाक्य है। इसका अर्थ यह है कि यीशु अपने मन में इस सच्चाई को जानता था कि दो दिनों के बादं वह मारा और गाड़ा जाएगा। किसी ऐसे व्यक्ति की विचारधारा की कल्पना करें जो दो दिनों में मारा और गाड़ा जाने

वाला हो। बैतनिय्याह की मरियम ही थी जिसने यीशु की उस बात को गंभीरता से लिया जो उसने अपनी मृत्यु के बारे में कही थी। उसने स्वयं से संभवत: इस तरह से कहा 'मैं नहीं जानती कि क्या होने वाला है। हो सकता है कि उसके मारे जाने के पश्चात् मुझे अपने इस कीमती इत्र को उसकी देह पर लगाने का अवसर न मिले और अब जबकि वह जीवित है तो उसके लिए यह जानना कितना अच्छा होगा कि उसके द्वारा मुझे परमेश्वर का मार्ग दिखाने के कारण मैं उसे कितना प्रेम करती हूँ मैं अभी उस पर अपने कीमती इत्र को उण्डेलूंगी!' उसने उसकी क्रूस पर विश्वास किया। यीशु के प्रति उसका प्रेम इसलिए उत्पन्न हुआ क्योंकि वह किसी तरह से यह जानती थी कि वह उसके लिए मरने पर है।

वह अपने महान प्रेम को यीशु को दिखाना चाहती थी। यीशु ने उसके लिए एक बहुत बड़ा कार्य किया था और जो कुछ यीशु ने उसके लिए किया था उसके आभार में वह यीशु के प्रति अपने प्रेम को प्रगट करना चाहती थी।

उसने इस बात की चिन्ता नहीं की कि दूसरे उसके बारे में क्या सोचेंगे। अवश्य ही वह जानती थी कि जो कुछ वह कर रही थी उसके लिए उसे आलोचना का सामना करना होगा। दूसरों ने उसे पागल समझा कि इतने मूल्यवान इत्र को बर्बाद कर रही थी जिसे यदि बेचा जाए तो एक वर्ष की मज़दूरी के बराबर धन प्राप्त होगा। परन्तु उसे इन चीज़ों की कोई चिन्ता नहीं थी। वह यीशु के लिए 'उग्र' बन गई थी।

3. हम देखते हैं कि **यहूदा ने क्रूस को कैसे देखा, यीशु की मृत्यु एक बड़े विश्वासघात के कारण हुई थी** (14:10-11)। जिस दिन स्त्री ने यीशु पर इत्र उण्डेला था उसी दिन यहूदा ने यीशु के साथ विश्वासघात का कृत्य किया था। यहूदा वह व्यक्ति था जिसने यीशु का शिष्य होने का दावा व ढोंग किया था। वह कभी भी एक विश्वासी नहीं रहा था। न ही वह शुद्ध था (यूहन्ना 13:10,11)। वह 'धर्मत्यागी' नहीं था (एक मसीही जो किसी गंभीर पाप के नियंत्रण में होता है); इसकी अपेक्षा वह एक ढोंगी था, एक ऐसा व्यक्ति जो शिष्यों में मिल गया और जिसने उनमें से एक होने का दावा किया परन्तु उसमें विश्वास न था।

कलीसिया को स्वीकार करना है कि उसके लोगों में कुछ तो यहूदा अवश्य ही होंगे। कुछ लोग हमेशा ऐसे पाए जाते हैं जो उस पर ढोंग करते हुए विश्वास करना सरल पाते हैं, जिस पर मसीही विश्वास करते हैं। वे परमेश्वर के कार्य से भी जुड़ सकते हैं। वे परमेश्वर द्वारा प्रयुक्त भी किये जा सकते हैं, बेशक यीशु उन्हें न जानता हो (देखें मत्ती 7:22-23)।

यीशु को इस ज्ञान में रहना था कि उसके निकट यहूदा था। यद्यपि जैसा उसने दूसरों से प्रेम किया वैसा ही प्रेम उसने यहूदा से भी किया, तौभी यहूदा ने कभी पश्चात्ताप नहीं किया।

यहूदा शिष्यों के साथ प्रथम स्थान में क्यों जुड़ा? निस्सन्देह वह यह सोचता था कि, परमेश्वर का राज्य एक सामर्थ का राज्य होगा तथा नई शासन प्रणाली का एक हिस्सा होने के कारण वह इसका लाभ उठाना चाहता था। जब यीशु ने इसे वृहत रूप से स्पष्ट किया कि वह क्रूस की ओर जा रहा था, तब यहूदा ने सोचा कि वह तो गलत दिशा में आ गया है। वह स्त्री जिसने एक वर्ष के धन को यह दिखाने के लिए गंवा दिया कि वह यीशु से कितना प्रेम करती है, यीशु के प्रति यहूदा की निष्ठा का अन्त था। अत्यंत निराशा में होकर उसने दिशा बदलने का निर्णय लिया। उसने क्रूस को मूर्खता कहा!

यह सब इसी तरह से हुआ। परमेश्वर क्रूस को अपने 'फसह' के रूप में देखता है, मानवजाति के पापों पर से उसके गुज़रने का तरीका ताकि जो उसके पुत्र पर विश्वास करे, बचाया जा सके या उद्धार पा सकें। क्या हम यहूदा के समान बनेंगे, जिसके लिए क्रूस एक मूर्खता का चिन्ह था, या उस स्त्री के समान होंगे जिसने यीशु से प्रेम किया क्योंकि वह जानती थी कि वह उसके लिए मारा जाएगा?

अध्याय 30

अन्तिम भोज
(मरकुस 14:12-26)

कहानी आगे बढ़ती है। अब **बृहस्पतिवार** है। यीशु के पास पृथ्वी पर जीवित रहने के लिए एक दिन बचा है। फसह और '*अखमीरी रोटी के दोनों पर्व*' (देंखे 14:1) एक के बाद एक होते देखे गए। कई बार इस समय को 'अखमीरी रोटी का पर्व' कहा गया है। 'पहला दिन ' **बृहस्पतिवार** का था, और वह दिन था जब मेंमनों का बलिदान दिया जाना था (14:12अ)।

मत्ती, मरकुस और लूका फसह के समय पर यीशु को फसह खाते हुए चित्रित करते हैं, जबकि यहून्ना फसह के समय पर यीशु को **मरते** हुए चित्रित करता है। अनगिनत संभावित व्याख्याएँ हैं परन्तु इनमें से एक जो सही प्रतीत होती है वह यह कि यीशु ने एक दिन पहले फसह का भोज खाया था।

यीशु प्रबन्ध करने के लिए दो शिष्यों को भेजते हैं (14:13अ)। वे एक ऐसे व्यक्ति से मिलेंगे जो उन्हें यरूशलेम की गलियों से लेकर जाते हुए एक गृहस्वामी के पास पहुँचाएगा (14:13 ब) जो उनके लिए आवश्यक

रहने की व्यवस्था करेगा (14:14-15)। यहाँ पर अलौकिक मार्गदर्शन होता प्रतीत होता है। एक व्यक्ति का परमेश्वर द्वारा नेतृत्व किया गया कि जो आवश्यक है उसको करे। यीशु का पवित्रात्मा द्वारा यह जानने को नेतृत्व किया गया कि क्या करना है।

यीशु के कहे अनुसार ही हुआ (14:16) और शाम के समय उन्होंने फसह के भोज को खाया (14:17)। **यीशु यहूदा के प्रति महान प्रेम का प्रर्दशन करते हैं।** वह शिष्यों को विश्वासघात की चेतावनी देते हैं (14:18)। यह यहूदा को दी गई चेतावनी का एक रूप था, तौभी इसके साथ-साथ यह उसे अपने निर्णय को बदलने को दिया गया समय था। उसका नाम न लेते हुए यीशु उसे सार्वजनिक रूप से अपमानित होने से बचाते हैं। कोई भी अब तक नहीं जानता था कि यहूदा अन्यों से भिन्न था। कोई भी सोचते हुए यह नहीं कह सकता था कि '*क्या वह यहूदा है?*' उन सब ने कहा, '*क्या वह मैं हूँ?*' (14:19) ऐसा भी प्रतीत होता है कि अन्तिम भोज के समय यहूदा भी वहाँ उपस्थित था। यीशु अभी भी उसके प्रति अद्‌भुत प्रेम प्रगट कर रहे थे। यीशु के शब्दों ने उसके पाप की गंभीरता पर बल दिया (14:20), परमेश्वर की योजना की असफलता (14:21) तथा भयंकर नियति विश्वासघाती की प्रतीक्षा में थे (14:22)।

अन्तिम भोज का होना। धन्यवाद देने के पश्चात् वह अपनी आगामी मृत्यु का संकेत देता है। रोटी यीशु के उसके अपनी देह में मरने को दिखाती है। दाखमधु लहू के प्रयश्चित का प्रतीक है जो एक नई वाचा की उद्‌घोषक है। रोटी का तोड़ा जाना यीशु के दुखों का प्रतीक है। लहू को बहुतों के लिए उण्डेला गया है। 'बहुतों' इब्रानी में प्रत्येक व्यक्ति को कहने का एक तरीका है (चूंकि इब्रियों के पास 'प्रत्येक व्यक्ति' को कहने का एक सही तरीका नहीं है)। पीना और खाना यीशु के पश्चात्तापी लूह पर विश्वास का प्रतीक है। हम यीशु से पोषण लेते तथा जो कुछ उसने क्रूस पर हमारे लिए किया उसके द्वारा उससे जीवन और शक्ति को प्राप्त करते हैं।

पद 25 शिष्यों को बताता है कि उन्हें तथा उनकी पीढ़ी को यीशु के लौट आने तक कैसे रहना है। अब से लेकर उन्हें एक क्रूसित उद्धारकर्त्ता पर विश्वास करने के द्वारा जीवित रहना होगा। उसके महिमा में लौटकर न आने

तक वे उसके साथ इस तरह से भोजन न कर सकेंगे, जबकि वह भौतिक रूप से उपस्थित हो।

भोजन का समापन आराधना और गीतों के साथ होता है और वे जैतून पर्वत की ओर जाना आरम्भ कर देते हैं (यूहन्ना 14:26)। यहूदा पहले ही चला जाता है (यहून्ना 13:30)।

मरकुस के सुसमाचार में इस बात का कोई निर्देश नहीं मिलता कि भोज को आगे भी इसी तरह से करते रहना है। मरकुस हमें प्रभु भोज की स्थापना पर विचार करने को आमंत्रित नहीं करता जिसनें बाद में एक धर्म-विधि के रूप में कलीसिया में स्थान लिया। हम इसे लूका 22:19 ब से जान पाते हैं परन्तु मरकुस के सुसमाचार से नहीं।

मरकुस हमें मूल क्रूस की ओर देखने के लिए आमंत्रित करता है।

1. **क्रूस हमारी आभारोक्ति को आमंत्रित करती है।** यीशु ने धन्यवाद देने के साथ आरम्भ किया। हमें यीशु के क्रूस के प्रति कितना अधिक आभारी रहना चाहिए। प्रेम कितना अद्‌भुत, कितना ईश्वरीय है--!
2. **यीशु ने हमारे पापों को अपनी देह में उठा लिया।** यीशु की पश्चात्तापी मृत्यु के बारे में एक चीज़ यथार्थ व भौतिक थी। जिस समय यीशु क्रूस पर लटका हुआ था, उस समय हमारे पापों को अक्षरशः उस पर डाल दिया गया था। '*वह आप ही हमारे पापों को अपनी देह पर लिए हुए क्रूस पर चढ़ गया' (1पतरस 2:24)।*
3. **यीशु की मृत्यु एक लहू-बलिदान था।** मेरा मानना है कि दाखमधु का रंग लाल होता था। यह लहू के समान दिखती होगी और यह यीशु के लहू बहाने के बारे में पुराने नियम के पशु बलिदान के रूप में ही बताती है।
4. **यीशु की मृत्यु ने एक नई वाचा का आरम्भ किया।** बलिदान के साथ एक वाचा का आरम्भ होना था। वाचा एक ऐसा संबन्ध था जिसमें एक शपथ को दिया जाता था। इस वाचा में हमारा यीशु के साथ होने का अर्थ है कि हमारे और उसके बीच एक स्थिर संबन्ध है। वह हमसे उसमें एक दृढ़ विश्वास के साथ जीवन व्यतीत करने को कहता है और जब हम

ऐसा करते हैं तो वह हमें एक शपथ देता है जिसमें वह हमें आशीष देता है और यह सब यीशु के लहू द्वारा होता है। यीशु के लहू के द्वारा ही हम अपनी प्रथम क्षमा प्राप्त करते हैं। यीशु के लहू द्वारा ही हम दैनिक शुद्धिकरण को प्राप्त करते हैं। यीशु के लहू में दृढ़ विश्वास के द्वारा ही हम लगातार यीशु के लिए जीवन व्यतीत करते हैं, इसलिए वह कहता है, *'मैं शपथ देता हूँ, मैं तुझे आशीष दूंगा।'*

5. **यीशु की मृत्यु महान दुख के साथ जुड़ी थी।** वह अपने दुखों में तोड़ा गया था। तौभी उसकी देह की एक भी हड्डी तोड़ी नहीं गई थी। उसे उतने दुखों से तोड़ा गया था जिन्हें वह सहन कर सकता था। वहाँ अपमान, टठ्ठा, अकेलापन, लज्जा, दर्द और सबसे बढ़कर परमेश्वर द्वारा छोड़ दिया जाना था।

6. **यीशु की मृत्यु से समस्त मानवजाति को लाभ हुआ है।** यह 'बहुतों' के लिए थी। यह प्रत्येक के लिए हुआ। प्रत्येक को यीशु में यह विश्वास रखने के द्वारा प्रतिक्रिया देने को आमंत्रित किया गया है कि वह उनके लिए मारा गया।

7. **हम से कहा गया है कि हम यीशु के लहू में दृढ़ विश्वास रखने के द्वारा जीवन व्यतीत करें।** हमें यीशु की *'देह को खाना है'* और *'उसके लहू को पीना है।'* इसका अर्थ है कि हमें यीशु के लहू में कभी न खत्म होने वाले भरोसे के द्वारा लगातार सक्रियता व आश्वासन को प्राप्त करना है। जब हम चिन्ता में होते हैं, जब हम दुख उठा रहे होते हैं, प्रत्येक परिस्थिति में, हम यीशु की ओर विश्वास में फिरते हैं जो पश्चात्ताप के लहू द्वारा वाचा में हमारे साथ है।

अध्याय 31

विश्वासयोग्य उद्धारकर्त्ता, दुर्बल शिष्य (मरकुस 14:27-42)

हमारी कहानी में यह **बृहस्पतिवार** की रात्रि है, जिसे हम साय 10:00 या 22:00 घण्टे कहेंगे। यीशु और उसके शिष्य जैतून के पर्वत की ओर जा रहे हैं, जो कि एक पहाड़ी क्षेत्र है और यरूशलेम की शहरपनाह से अधिक दूर नहीं है। साथ-साथ चलते हुए यीशु उनसे बात कर रहे हैं।

1. हमारा **एक उद्धारकर्त्ता है जो विश्वासयोग्यता के साथ अपने शिष्यों को बताता है कि आगे क्या है।** यीशु उन्हें पुनः इस बारे में सावधान करता है कि आगे क्या होने वाला है। वे स्वयं की उसके शिष्य के रूप में पहचान नहीं करेंगे। वह स्वयं मारा जाएगा। वे बिखर जाएंगे। परन्तु वह पुनः जीवित होगा और अब वह उन्हें निर्देश दे रहा है कि अपने पुनरूत्थान के पश्चात् वह उनसे आगे-आगे गलील को जाएगा (14:27-28)। यीशु चाहता था कि उन्हें उसकी विश्वासयोग्यता का ज्ञान हो। उसे छोड़कर भाग जाने के पश्चात् भी वह उनके प्रति विश्वासयोग्य रहेगा।

2. हमारे **ऐसे शिष्य हैं जो अपनी दुर्बलताओं से अनजान हैं।** पतरस विशेष रूप से अति आश्वस्त था। इस विषय पर यीशु के किसी भी शब्द को प्रेरितों द्वारा गंभीरता से नहीं लिया गया था। जो कुछ यीशु ने कहा था उसका केवल बाद में ही उनके लिए कुछ अर्थ होगा। वे उनके विचार को ग्रहण नहीं कर सके कि वह मारा जाएगा। आने वाले समय के पुनरूत्थान के संबन्ध में वे विश्वास नहीं कर रहे थे। पतरस बल देकर कहता है कि चाहे कुछ भी हो जाए वह यीशु के साथ रहेगा (14:29), तो भी यीशु ने कहा कि कुछ ही घंटों में पतरस उसे जानने से इन्कार करेगा। सुबह होने से पहले ही यह इन्कार होगा (14:30)। जो कुछ उनसे कहा गया था उनमें से किसी ने भी उसे स्वीकार नहीं किया (14:31)।

3. **उनकी दुर्बलताओं का स्त्रोत जल्द ही प्रगट होने वाला है**। यीशु शिष्यों को प्रार्थना करने के लिए आमंत्रित करता है। उसके पास प्रार्थना के कुछ ऐसे विषय थे जिसमें उसे अकेले इसे करना था; यद्यपि वे सभी समान थे तौभी हम यीशु को कभी शिष्यों के साथ प्रार्थना करता हुआ नहीं पाते हैं। यीशु का पिता के साथ एक संबन्ध था जो कि शिष्यों का नहीं था। वह स्वयं प्रार्थना करना चाहता था, वह चाहता था कि वे भी उसके निकट दूरी पर ही प्रार्थना करें। यह एक विशेषाधिकार था जो उनमें से तीन को ही दिया गया था (14:32)।

वह अपने लिए प्रार्थना करना आरम्भ करता है। वह एक बड़े दु:ख में है। वह शिष्यों के साथ उस गहरी निराशा को बांटता है जो उसके क्रूस के निकट जाते हुए उस पर भारी है। यह तो अक्षरश: उसकी हत्या करना है। वह तब उनसे जागते रहने को कहता है जिसका अर्थ है 'जागते रहना और प्रार्थना करना' (14:33-34)। वह उनसे कुछ दूरी पर जाकर प्रार्थाना करना आरम्भ कर देता है। कि संसार को उद्धार देने का कोई और तरीका संभव हो, तो उस से होकर से जा सके। यीशु एक मनुष्य है। उसके मस्तिष्क में प्रत्येक चीज़ का पूरा ज्ञान नहीं है कि क्या होना है। संसार को बचाने के तरीके के बारे में न जानता हो। यदि क्रूस से बचने का कोई तरीका है तो वह इससे बचना पसंद करेगा (14:35)।

वह परमेश्वर के लिए अपने प्रिय शब्द 'अब्बा' का प्रयोग करते हुए उससे बहुत गिड़गिड़ाकर से प्रार्थना करता है। 'अब्बा' अरामी भाषा का शब्द

है जिसका अर्थ पिता है। तो भी प्रार्थना करते हुए वह जानता है कि क्रूस निश्चय ही उसके लिए पिता की इच्छा है और वह इसे स्वीकार करता है, *'जैसा मैं चाहता हूँ वैसा नहीं पर जो तू चाहता है'* (14:36)।

निराशा के ऐसे समय में कोई भी शिष्यों से अपेक्षा कर सकता है कि वे परमेश्वर से सहायता प्राप्त करने के लिए उत्सुकता से प्रार्थना करें, परन्तु वास्तव में वे तो सो रहे हैं (14:37)। शिष्य अति-आश्वस्त हैं परन्तु वे प्रार्थना नहीं कर रहे हैं। यीशु उदारता से उन्हें झिड़कता है। ऐसे समय होते हैं जब प्रार्थना को नींद से ऊपर रखना होता है। पतरस यह मानता है कि वह मसीह के साथ मरने को भी तैयार है परन्तु उसमें इतनी हिम्मत नहीं है कि मसीह के लिए कुछ घण्टे जाग सके। उन्हें जागते रहना चाहिए। उनमें आत्मा की जागृति होनी चाहिए और यह देखने की उत्सुकता भी कि क्षितिज पर उन्हें हानि पहुंचाने वाली कौन सी चीज़ धुंधली सी है। सही प्रार्थना करने के लिए इस तरह से जागृत रहने की आवश्यकता होती है *'उन्हें सयंमी होकर प्रार्थना के लिए सचेत रहना है'* (1 पतरस 4:7)। यीशु उन्हें झिड़की के साथ साथ प्रोत्साहन का यह शब्द देता है क्योंकि अभी भी समय बाकी है। वे अभी भी खड़े होकर प्रार्थना करना आरम्भ कर सकते हैं और इस तरह से वे स्वयं को आने वाले खतरे से बचा सकते हैं।

प्रलोभन से बचने के लिए इस तरह से जागते रहने और प्रार्थना करते रहने की आवश्यकता है। यह प्रलोभन में इतना अधिक गिरने के समान है कि वे पाप के दोषी बन सकते हैं।

यीशु ने स्पष्ट किया कि देह की कमज़ोरी के कारण वे प्रार्थना करने में कमज़ोर बने। इस संबन्ध में देह उनके भौतिक गठन का एक प्रमाणिक संदर्भ है। वे बहुत थक गए थे, और उनकी थकान ही उनकी प्रार्थना करने में बाधा बन रही थी (14:38)।

उनकी दुर्बलता उस समय अधिक प्रगट हुई जब यीशु दूसरी बार आकर उन्हें नींद के नियंत्रण में पाते हैं 14:39-40 अ)। वे लज्जित थे और नहीं जानते थे कि क्या कहें (14:40 ब)। जब वही चीज़ तीसरी बार हुई (14:41) तब यीशु ने कहा, *अब सोते रहो, बस!* अनुवादित शब्द 'बस' का अर्थ है, मैंने तुम्हें पर्याप्त चेतावनी दी परन्तु अब प्रार्थना करने का अवसर बीत

गया है (14:41)। यीशु जानता था कि उसके पकड़वाए जाने का समय आ गया है।

यीशु के ज्ञान को पिता द्वारा नियन्त्रित किया गया था। यीशु एक सही मनुष्य थे जिसने अपने मस्तिष्क में अनावश्यक ज्ञान को नहीं रखा। वह प्रश्न कर सका। तो भी यह समान रूप से स्पष्ट है कि पिता ने उसे अलौकिक ज्ञान दिया था। निश्चय ही यीशु को अपनी मृत्यु के बारे में निश्चित ज्ञान था। कहानी की इस सीमा पर आकर वह देर रात्रि में सिपाहियों को मशालें लेकर आता हुआ देख सका, जो कि उसे पकड़ने के लिए आ रहे थे। उसने शिष्यों को बुलाया कि अपनी नींद को छोड़कर उसके साथ आकर यहूदा और सिपाहियों से आकर मिलें जो कि निकट ही थे (14:42)।

यीशु अपनी घड़ी से मिलने को तैयार था परन्तु शिष्य नहीं थे। उन्होंने यीशु की चेतावनियों पर विश्वास नहीं किया न ही जागृत रहने की उसकी बुलाहट को सुना और प्रार्थना की तैयारी में आलसी रहे थे। पूरा समूह सिपाहियों से जाकर मिला परन्तु उनमें से केवल एक ही तैयार था।

अध्याय 32

सहानुभूति के योग्य
(मरकुस 14:43-72)

अब हम यीशु के तीव्र दुखों की अवधि में प्रवेश कर रहे हैं। इसे हम शुक्रवार की प्रात: के कुछ आरम्भिक घण्टे कहेंगे।

1. **यीशु विश्वासघात का दुख उठाते हैं।** महायाजकों, शास्त्रियों और पुरनियों की ओर से एक बड़ी भीड़ हथियार लिये हुए वहाँ आई (14:43)। वे मन्दिर के सिपाही तथा विभिन्न तरह के अधिकारी थे (देखें यूहन्ना 18:12)। वे एक अधिकारिक तरीके से आए। पहले कुछ क्षणों तक कोई गिरफ्तारी नहीं हुई। तत्पश्चात् जैसा संकेत देने के लिए निर्धारित किया गया था यहूदा ने यीशु को चूमा (14:44-45)। चूमा लेने को इसलिए निर्धारित किया गया था ताकि गिरफ्तारी को जितना जल्द हो, किया जा सके। यदि यहूदा केवल चिल्लाता, 'वहीं है' निश्चय ही वहाँ कोलाहल बढ़ता। यीशु को गिरफ्तार कर लिया जाता है (14:46)।

   यीशु को एक धोखेपूर्ण तरीके से निकटतम् विश्वासघात का अनुभव मिला था।

2. **यीशु को उसके मित्रों द्वारा छोड़ दिया गया।** आरम्भ में तो शिष्य भाग जाने को तैयार थे। उनमें से एक तो उसी समय वहां हिंसा करने को तैयार हो गया और उसने महायाजक के एक कर्मचारी का कान काट दिया (14:47)। परन्तु यह स्पष्ट हो जाने पर कि यीशु न तो भागने को और न ही कोई हिंसक क्रान्ति करने को तैयार थे (14:48-49), शिष्य भाग गए (14:50)। यीशु का एक अनुयायी तो पकड़े जाने के भय से अपनी चादर छोड़कर नंगा ही भाग गया (14:51-52)।

   कोई भी कभी कह सकने के योग्य नहीं होगा कि यीशु यह नहीं जानता कि मित्रों के छोड़कर भाग जाने का दुख कैसा होता है। वह स्वयं इस अनुभव से होकर गुज़रा।

3. **यीशु ने नामधारक कलीसियाओं की घृणा को अनुभव किया।** यह नहीं भूल जाना चाहिए कि इस अवस्था में यीशु को इतनी घृणा दिखाने वाले लोग धार्मिक लोग ही थे। वहां महायाजक तथा अन्य सभी वरिष्ठ याजक थे (14:53)। वहां पुरनिये और धर्मशास्त्री थे (14:53)। यीशु के प्रति यह हिंसक और ज्वलंत घृणा इस्राएल के सामान्य लोगों द्वारा नहीं की गई थी या फिर विशिष्ट दुष्ट लोगों के द्वारा ऐसा नहीं किया गया था। ये धर्मी लोग थे जो यीशु के प्रति घृणा प्रगट कर रहे थे। पतरस भी वहां एक दर्शक के रूप खड़ा आग से हाथ ताप रहा था (14:54)।

   यह बहुत ही असहनीय होता है कि जिन लोगों को परमेश्वर की ओर से कार्य को ग्रहण करना है वही इससे सबसे अधिक घृणा करने वाले होते हैं। यीशु जानता है कि इससे कैसा लगता है। वह स्वयं इससे होकर गुज़रा था।

4. **यीशु जानता है कि निन्दा और कहानियाँ बनाना कैसा होता है।** धर्मी लोग उस पर दोष लगाने के लिए प्रमाण खोजने लगे (14:55)। यह दोष सिद्ध किये जाने तक निर्दोष बने रहने का मामला नहीं था। यह निर्दोषता सिद्ध होने तक दोषी बने रहने का भी मामला नहीं था। यह निर्दोष होते हुए भी दोषी बनाने का मामला था।

   क्या आप कभी इससे होकर गुज़रे हैं? किसी ने कभी दुर्भावना से आपके विरुद्ध इस तरह का कार्य किया है। यह तो दुर्भावना, ईर्ष्या, अभिलाषा है

और आप उस अभिलाषा की पूर्ति में बाधक बन रहे हैं इसलिए आपको छुटकारा पाना है।

यीशु भी इससे होकर गुज़रा है। यीशु जानता है कि ऐसी परिस्थिति में कैसा लगता है।

5. **यीशु जानता है कि किसी के लिए कहानियाँ बनाना कैसा होता है।** प्रत्यक्ष निन्दा के असफल हो जाने पर(14:56) वे एक दूसरी विधि पर प्रयास करते हैं। वे अधूरे सच वाली कहानियों को लेकर उन्हें नया मोड़ देते हैं (14:59-60)। यीशु ने यह नहीं कहा 'मैं इस मन्दिर को नाश करूंगा' परन्तु उसने कुछ ऐसा ही कहा था (यूहन्ना 2:19)।

6. **यीशु पर स्वयं के विरुद्ध गवाही देने के लिए अवैधानिक रूप से दबाव डाला गया था।** तब महायाजक ने प्रयास किया कि यीशु स्वयं पर ही दोष लगाए। यहूदी व्यवस्था का इतिहास इस समय अनिश्चित था। परन्तु यह असामान्य प्रतीत होता था कि मध्यरात्रि के बीच के परीक्षण के आधार पर एक व्यक्ति पर स्वयं पर दोष लगाने के लिए दबाव डाला जाए। महायाजक यीशु को स्वयं को मसीहा कहने के लिए प्रोत्साहित करता है (14:60-61)। ऐसा कहा जाना कभी भी सही नहीं होगा कि यीशु में मसीहा होने का दावा करने की स्पष्टता की कमी थी। वह निर्भीकता से दानिय्येल 7:13 का ईश्वरीय मसीही राजा होने का दावा करता है, और महायाजक से कहता है कि वह जल्द ही इसे देखेगा। यह यीशु के दूसरे आगमन का सन्दर्भ नहीं है। इसकी अपेक्षा यह शीघ्र होने वाली घटनाओं का उल्लेख करता है पवित्रात्मा का उण्डेला जाना, प्रेरितों की निर्भीकता से दी गई गवाहियाँ, यरूशलेम का पतन जो इस बात का चिन्ह होगा कि यीशु पिता **के** पास अपने राज्य को ग्रहण करने को आता है। यह मरकुस 13:26 के समानातर है।

   यीशु का निर्भीकतापूर्ण स्वीकरण उस पर ईश-निन्दा के अभियोग का कारण बनता है (14:63-64)। परन्तु मध्यरात्रि के बीच एक व्यक्ति के अपने ही विरुद्ध प्रमाण देने की यह समस्त प्रक्रिया अन्यायपूर्ण थी।

7. **यीशु जानता है कि शारीरिक हिंसा का सहना कैसा होता है।** अगुवों की भीड़ ने यीशु पर थूकना, घूंसे मारना और उसका टठ्ठा करना आरम्भ

कर दिया। ये व्यक्ति जो कि परमेश्वर के पुत्र के आमने सामने थे- याजक व शास्त्री थे। वे आधुनिक मसीहियों की तुलना में पुराने नियम को बहुत अच्छी तरह से जानते थे। वे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे मूसा की व्यवस्था से प्रेम करते थे। तो भी उनके धर्म ने यीशु के प्रति इस तरह की चीज़े करने की अनुमति उन्हें दी (14:65)। अपने अगुवों की ही तरह पहरेदारों ने भी यीशु को पीटा।

अनपेक्षित स्त्रोतों द्वारा बुरा व्यवहार किये जाने पर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया जाए तो हम जान सकते हैं कि यीशु जानता है ऐसी स्थिति में कैसा लगता है।

8. **यीशु जानता है कि मित्र द्वारा छोड़ दिये जाने पर कैसा लगता है।** एक दासी तथा आंगन में खड़े लोगों द्वारा छान-बीन किये जाने पर पतरस यीशु के साथ किसी भी संबन्ध को रखने से इन्कार करता है (14:71)। और ऐसा कर वह यीशु की उसके लिए की गई भविष्यवाणी को पूरा करता है (14:72)।

यीशु कई दुखों अथवा सतावों से होकर गुज़रा था, क्योंकि उसने स्वयं दुख उठाया, इसलिए वह उनकी भी सहायता करने में समर्थ है जिनकी परीक्षा होती है (देखें इब्रानियों 2:18)। उसने कठिनाई की हर किस्म का अनुभव किया तथा प्रत्येक उस ऐसी स्थिति का भी जिसमें हम स्वयं को पाते हैं। वह जानता है कि ऐसी परिस्थिति में कैसा लगता है। उसके दुख सहानुभूति प्रगट करने में उसे समर्थ करते हैं।

अध्याय 33

निर्दोष को दोषी पाया गया (मरकुस 15:1-20)

मरकुस, यीशु के प्रति किये गए अन्याय को जारी रखता है। अब यह **शुक्रवार** की सुबह है। दूसरी सभा भी होनी है (15:1 अ)। यीशु को अधिकारिक रूप से यहूदी संसद द्वारा दोषी ठहराया गया और उसे पीलातुस को सौंप दिया जाता है (5:1 ब)। यहूदी एक उपनिवेशी शासन के अधीन हैं। मृत्यु-दण्ड का निर्णय रोमी सरकार के हाथों में था।

1. **अतः यीशु इस्राएल पर अपने राजाधिकार को स्वीकार करते हैं।** यीशु इस्राएल के उपयुक्त राजा हैं। वह दाऊद की वंशावली में से थे। इससे उनका कुछ भला न होगा, परन्तु यीशु ईमानदार व्यक्ति थे और परीक्षण के समय वह किसी भी तरह इस बात से इन्कार न कर सके कि वह ही इस्राएल के सच्चे राजा हैं।

2. **यीशु अभियोग का सामना करते हुए शांत रहते हैं।** यूहदी अगुवे यीशु पर कई बातों का दोष लगाते हैं (15:3)। परन्तु पिलातुस को हैरानी होती है कि उसके

बदले में वह कुछ नहीं कहता (15:4-5)। अभियोग लगाने के समय शांत रहना परमेश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण करने का चिन्ह है। कुछ ही ऐसा कर सकते हैं। जन्मजात सहनशीलता के अतिरिक्त उन्हें अपनी सहनशीलता पर घमण्ड होता है। महायाजक निष्कपट नहीं थे। अगर यीशु कुछ भी कहता तो वे उसे गंभीरता से न लेते, अत: वह क्यों कुछ कहता? हममें से अधिकांश की बातचीत हमारी भावनाओं को व्यक्त करती है, स्थिति की आवश्यकता से सहयोग करने की अपेक्षा परन्तु यीशु में अत्यधिक आत्म-नियंत्रण था।

3. **निर्दोष मारा गया तथा दोषी को छोड़ दिया गया।** यीशु को छोड़ दिये जाने की संभावना थी क्योंकि फसह के पर्व पर एक अभियोगी को छोड़ने की रीति थी (15:6-8)। सामान्य लोग यीशु को मुक्त कराना चाहते थे, परन्तु मुख्य याजकों ने बरअब्बा को मुक्त कराने को प्रेरित किया (15:9-15अ)। यीशु को क्रूसित होने के लिए सौंप दिया गया (15:15ब)।

   यह एक रूढ़िवादी धर्म की अनुपयोगिता को प्रगट करता है। याजक पुराने नियम पर विश्वास करते थे। वे मसीहा की प्रतीक्षा में थे। परन्तु वे परमेश्वर को नहीं जानते थे। जब परमेश्वर का पुत्र उनके सामने था, वे उसे जान न सके कि वह कौन है। उनके हृदय शत्रुता और द्वेष से भरे थे। उनका आत्मिक ज्ञान आत्मिक अन्धेपन से जुड़ा था।

   अत: दोषी बरअब्बा को छोड़ दिया गया और निर्दोष यीशु को दण्डित किया गया। यह स्पष्ट रूप से प्रत्येक स्त्री और पुरुष की स्थिति को दिखाता है। हम दोषी हैं। यीशु निर्दोष है। यीशु मारा गया। हमें मुक्त किया गया । उसे मुक्त होना था और हमें दण्डित होना था।

   यही सुसमाचार है। यीशु हमारे पापों के लिए क्रूस पर मारा गया, यद्यपि वह स्वयं निर्दोष था तथा उसने कभी पाप न किया था; तो भी उसे इस तरह से दण्डित किया गया मानों उसके बराबर कभी कोई पापी न रहा हो। मानवजाति के समस्त पापों को उस पर डाल दिया गया।

   और हम जो कि बरअब्बा के समान हैं, हमें स्वतंत्र होने की अनुमति मिल गई है। जब बरअब्बा जेल में अपने दुख भरे दिन काट रहा था तब कोई

   आकर उससे कहता है, 'बरअब्बा तुम घर जा सकते हो। तुम आज़ाद हो अब तुम्हें कारावास में रहने की आवश्यकता नहीं ।

   'परन्तु यह सब कैसे हुआ? बरअब्बा ऐसा पूछ सकता था।

   उसे जवाब मिला, 'उन्होंने यीशु को क्रूस पर चढ़ाने तथा तुम्हें मुक्त करने का निर्णय लिया है।'

   अभी भी ऐसा ही है परमेश्वर ने निर्णय लिया कि यीशु को क्रूस पर चढ़ाया जाए और वह हमारी मुक्ति का प्रबन्ध करता है।

4. **अत: यीशु ने सिपाहियों के टट्ठा को सहन किया।** उन्होंने उसके **राजाधिकार** का ठट्ठा किया। बैंजनी वस्त्र राजाओं का प्रतीक था (15:16-17)। उन्होंनें उसके सिर पर एक नकली मुकुट रखा (15:18)। उसका उपहास उड़ाते हुए उन्होंने उसे नमस्कार किया (15:19), परन्तु इसके बाद वे उसे क्रूस पर चढ़ाने के लिए ले गए (15:20)।

यह स्पष्ट है कि हर कोई यीशु द्वारा किये जाने वाले दावे को जानता था। बरतिमाई जानता था कि वह दाऊद का पुत्र था (10:47-48)। लोगों ने अपने राजा के रूप में उसका अभिवादन किया था (11:1-11)। जाँच के समय महायाजक विषय को जानता था, *'क्या तू मसीह है?'* (14:61)। पीलातुस जानता था; *'क्या तू यहूदियों का राजा है?'* (15:2)। यीशु ने स्वयं बरतिमाई के दावे को स्वीकार कर महायाजक को निर्भीकता तथा ईमानदारी से जवाब दिया था (14:62), और पीलातुस को सच बताया था (15:2)। अब सिपाही यीशु के दावे को भी जानते हैं।

परन्तु राजाधिकार दुखों से होकर आता है। यीशु एक दुख **उठाने वाला** राजा थे। यह सब जाने बिना ही सिपाही सही कर रहे थे। वे उसका राजा के रूप में अभिवादन करने के साथ-साथ उसे दुखों में भी डाल रहे थे। वे सही हैं। यीशु एक राजा हैं। बैंजनी वस्त्र उससे ही संबन्धित है। मुकुट को सही रूप में उसके सिर पर रखा गया है। उनका उसके सामने झुकना भी वास्तव में ज़रूरी है। तो भी उसी समय वे यीशु के दुख व दर्द का कारण बन रहे हैं।

यह सब हमारे पापों के दण्ड का एक हिस्सा था। यीशु बहुतों के लिए अपने जीवन को प्रायश्चित के रुप में दे रहा था। यीशु अपने जीवन को बहुतों

के प्रायश्चित के लिए दे रहा था। अपने पापों के कारण हम लज्जा और अपमान उठाने के लायक थे। अपने पापों के कारण हम शारीरिक दर्द और मित्रों के छोड़ दिये जाने के योग्य थे। यीशु **हमारे लिए** दुख उठा रहा था। वह उस सब से होकर गुज़रा जिसमें से हमें गुज़रना था।

यीशु ने इस सब को सहन किया। उसने कोई जवाब न दिया। उसने बदले में उनका कोई अपमान न किया। वह उन पर नहीं चिल्लाया। उसने कुछ नहीं कहा और सब कुछ सह लिया।

एक दिन यह सब विपरित दिशा में होगा। वे, जिन्होंने उसे छेदा था वे उसके कारण विलाप करेंगे। जो कुछ ठट्ठों में किया गया था एक दिन वह सब निष्कपटता से किया जाएगा। जल्द ही प्रत्येक घुटना झुकेगा, प्रत्येक जीभ यह स्वीकार करेगी कि यीशु ही प्रभु है।

हम जो कि यीशु में विश्वास रखते हैं, इसे अच्छी तरह से कर रहे हैं। हम उसे बैंजनी वस्त्र पहना रहे हैं। वह हमारे जीवन का राजा है और हमारी दृष्टि में वह पहले से ही राजसी प्रताप में है।

हम उसके सिर पर मुकुट रख रहे हैं। वह हमारा राजा है। हम उसे बहुत से मुकुट पहने देख हर्षित हैं। हम उसे परमेश्वर के मेंमने के रूप में सिंहासन पर बैठा देखते हैं।

हम घुटने झुकाकर और उसके सम्मुख गिरकर आराधना करते हैं।

जो कुछ सिपाहियों ने उसे दुख देने के संबन्ध में किया, हम उसे आज इच्छापूर्वक करते हैं। हम आज विश्वास से वह करते हैं जो समस्त संसार उसे देखने पर करेगा। हम आज उस पर विश्वास करते हैं जिस पर एक दिन सारा संसार विश्वास करेगा।

अध्याय 34

क्रूसीकरण और गाड़ा जाना
मरकुस 15:21-47

यीशु के पीलातुस की सभा से बाहर निकलने पर रोमी अधिकारियों ने वहाँ से गुज़रते एक व्यक्ति को बलपूर्वक यीशु के क्रूस उठाने में मदद करने को कहा (15:21)। रोमी नियम में क्रूसित किये जाने वाले व्यक्ति को अपना क्रूस स्वयं उठाकर चलना होता था, परन्तु यीशु शारीरिक रूप से इतना दुर्बल हो गया था कि किसी और को इस कार्य को करने के लिए कहा गया।

अत: हम एक ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जिस पर

(1) **क्रूस को उठाने का दबाव दिया गया।** शमौन सिकन्दर और रूफुस का पिता, जिससे मरकुस रचित सुसमाचार के पाठक भली-भाँति परिचित है। रोमियों 16:13 रोम में रूफुस तथा उसकी माता का भी वर्णन करता है। हमने यहाँ पर एक जाने पहचाने मसीही परिवार का वर्णन किया है जो बाद में रोम में रहने लगा था। शमौन द्वारा यीशु की क्रूस उठाने को दबाव देना मरकुस 8:34 का एक अच्छा उदाहरण है। यह उसके साथ अचानक से हुआ था। वह '*गाँव से आ रहा था*'

तब रोमियों ने उसे अचानक से पकड़कर यीशु की क्रूस उठाने की माँग की। हमारे साथ भी कुछ ऐसी घटनाऐं, हो सकती हैं जब हमसे अनपेक्षित रुप से ऐसे किसी भारी बोझ को उठाने के लिए कहा जा सकता हो। यीशु ने पहले से ही कहा था कि उसके पीछे चलने वाले को क्रूस उठाना होगा। जैसे-इच्छापूर्वक उस असहनीय दण्ड को स्वीकार करना जो परमेश्वर हम पर डालता है। यह एक यथार्थ घटना है परन्तु यह यीशु के निर्देश को उद्धरित करती है। शमौन द्वारा यीशु की क्रूस उठाने से उसे विश्वव्यापी रूप से आदर और सम्मान मिला। उसके क्रूस उठाने से उसे आदर मिला। मुझे नहीं लगता है कि उसे ऐसा करते हुए उसे आनन्द का अनुभव हुआ होगा, परन्तु ऐसा करने के द्वारा उसे यीशु को उसके क्रूसित किये जाने के समय पर दुखों से कुछ आराम दिलाने का विशेषाधिकार मिला।

(2) हम यीशु के लिए **क्रूस के महान मूल्य** के बारे में भी पढ़ते हैं। उसे शहर से बाहर गुलगुता (खोपड़ी नामक स्थान) ले जाया गया था (15:22)। उन्होंने यीशु को मुर्र मिला हुआ दाखरस दिया जिससे उसे कुछ बेहोशी सी आ जाए (15:23) परन्तु यीशु क्रूस पर होश में रहना चाहता था। वह संसार के पापों को नींद या नशे की हालत में उठाना नहीं चाहता था। यह यीशु के लिए बहुत अपमान और शर्मिन्दगी की बात थी । उन्होंने उसके वस्त्रों पर चिट्ठियाँ डालीं कि किस को कौन सा मिलेगा (15:24)। तीसरे घंटे पर (प्रात: 9) उसे क्रूसित कर दिया गया था (15:25)। पुन: उनका यीशु का '*यहूदियों के राजा*' के रूप में ठट्ठा उड़ाना, उनकी अज्ञानता में भी सत्य था (15:26)। यीशु को अपराधियों के साथ क्रूस पर टाँगा गया था (15:27) और उसने अत्यंत उपहास व निन्दा का सामना किया (15:28-32)।

(3) **अब हम यीशु के बलिदान की पराकाष्ठा** पर आते हैं। ऐसा लगता है कि अब तक जो कुछ भी हुआ था वह क्रूस के सर्वोच्च विषय की केवल तैयारी मात्र ही था। अंधकार के तीन घण्टे पूर्णतया छुटकारे को दिखाते हैं। यह पुराने नियम युग के अन्त का चिन्ह तथा नई वाचा का आरम्भ था। यह पुराने नियम के विषयों में से एक है। प्रभु के विशेष दिन में '*सूर्य अन्धकारमय हो जाएगा*' (देखें यशायाह 13:10, आमोस 8:9)।

पिता के उसे छोड़ देने पर तथा उसके साथ सहभागिता को तोड़ देने के कारण ब्रह्मांड ने भी उससे मुँह फेर लिया था (15:33)। तीन घण्टे की अत्यंत पीड़ा थी। क्रूस पर कुछ ऐसा था जिसकी अपेक्षा यीशु ने नहीं की थी। वह इस समय एक **प्रश्न** कर रहा था (15:34)। अरामी भाषा में कहे गए उसके शब्दों का विवरण मिलता है। मरकुस हमें ठीक-ठीक बताना चाहता है कि यीशु ने क्या कहा था (15:34)। कुछ को हैरानी थी कि क्या अन्तिम मिनट में भी कोई चमत्कार होगा (15:33-36), परन्तु यीशु ने अपना जीवन परमेश्वर को सौंप दिया था (15:37)।

इसके बाद हम **क्रूस के परिणामों** पर आते हैं। दो चीज़ें उसी क्षण हुई। महापवित्र स्थान का पर्दा ऊपर से नीचे तक फटकर दो टुकड़े हो गया (15:38)। ये परमेश्वर का यह बताने का एक तरीका था कि परमेश्वर के पुत्र के लहू द्वारा उसके लोंगों के लिए सहभागिता का उच्च स्तर अब खुल जाएगा।

एक रोमी सिपाही ने उसी समय यीशु पर परमेश्वर के पुत्र के रूप में विश्वास किया (15:39)। यह एक अद्‌भुत गवाही थी। इस समय से पहले ही परमेश्वर ने यीशु की अपने पुत्र होने के रूप में घोषणा कर दी थी (मरकुस 1:11,9:7) और शिष्य भी उसी चीज़ को देखने आए थे (8:29), परन्तु इस अन्यजाति सिपाही ने यीशु को क्रूस पर देखने के द्वारा एक कदम पर ही उसे प्राप्त कर लिया था। यह एक महान उत्तेजना है। क्रूस प्राणदण्ड देने का एक घृणित तथा निर्दयी उपकरण थी। यह यीशु पर विश्वास रखने के मार्ग में सबसे बड़ी ठोकर का कारण थी। परमेश्वर का पुत्र इस तरह से कैसे मर सकता है? यद्यपि अधिकांश अन्धे थे तथा यह नहीं देख सके कि यीशु कौन था, इस अन्यजाति सिपाही ने उसी समय विश्वास किया। यह क्रूस की सामर्थ का एक चिन्ह है। यीशु की क्रूस के कायम रहने पर कुछ लोग क्रूस और अपमान की लज्जा के बावजूद विश्वास में आएंगे।

अध्याय के अन्त में मरकुस चाहता है कि **यीशु की गवाही** को जानें। यद्यपि यीशु के सभी शिष्यों ने उसे छोड़ दिया था, यीशु के शिष्यों में से ही कुछ स्त्रियाँ वह सब देख रही थीं जो कुछ वहाँ हो रहा था (15:40-41)। वे महत्त्वपूर्ण गवाह थीं क्योंकि उन्होंने यह सही रूप से जाना कि यीशु की

देह का क्या हुआ था। मरकुस की कहानी उस अद्‌भुत चीज़ की तैयारी है जो ईस्टर रविवार को होगी।

शुक्रवार की शाम को अरिमतिया के यूसुफ ने पीलातुस से यीशु की लोथ को माँगा (15:42-43)। यीशु के कुछ समर्थक अद्‌भुत स्थानों से थे। कौन यह जानता था कि सन्हेद्रिन का एक प्रतिष्ठित सदस्य विश्वास में होकर परमेश्वर के आने वाले राज्य की प्रतीक्षा में था (15:43), और जिसे परमेश्वर की ओर से यीशु का समर्थक और हमदर्द ठहराया जाएगा।

पीलातुस को यह जानकर हैरानी हुई कि यीशु मर चुका था, परन्तु उसने देह को नीचे उतारे जाने की अनुमति दी (15:44-45)। यूसुफ ने यीशु की देह को गाड़ा और यीशु के साथ रहने वाली स्त्रियों ने उस स्थान को ध्यान से देखा (15:46-47)। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि इसका अर्थ यह था कि वे उस कब्र को ठीक-ठीक जानती थीं जहाँ यीशु को गाड़ा गया था। इससे ईस्टर रविवार को किसी तरह का कोई संदेह नहीं होगा। जो लोग परमेश्वर की ओर खुले रहते हैं वे इस सच्चाई पर कभी संदेह नहीं कर पाते हैं कि यीशु मृतकों में से जीवित हुआ। परमेश्वर के उद्देश्य में यीशु के अपने मित्र इस बात के गवाह थे कि यीशु को कहाँ गाड़ा गया है और एक धनी व सामर्थ व्यक्ति जो कि इस्राएली संसद का सदस्य था, यह प्रमाणित करने के योग्य हो सका कि यीशु के गाड़े जाने में उसने व्यक्तिगत रूप से हिस्सा लिया है। इस तरह की अन्य किसी महान गवाही का होना कठिन है कि यीशु मर गया और गाड़ा गया और फिर जी उठा।

अध्याय 35

यीशु जीवित है
मरकुस 16:1-8

शनिवार देर रात्रि पर सांय के 6 बजे तक सब्त के समाप्त हो जाने के पश्चात् तीन स्त्रियाँ यीशु की देह पर लगाने के लिए मसालों को खरीदने गईं। इनमें से एक स्त्री मरियम मगदलीनी थी। दूसरी याकूब की माँ मरियम थी, और तीसरी सलोमी थी। अगली सुबह उन्होंने यीशु की देह पर मसाला लगाने जाने का निर्णय लिया (16:4), जो कि **रविवार** होगा।

अगली सुबह तीनों स्त्रियाँ यीशु की कब्र पर गईं, परन्तु वे इस बात से हैरान थीं कि कब्र के प्रवेश द्वार पर से किसने इतने बड़े पत्थर को लुढ़का दिया था (16:2-3)। वे वहाँ पहुँची तो पत्थर पहले से ही लुढ़का हुआ था (16:4)। एक युवा व्यक्ति वहाँ था, जिसने एक स्वर्गदूत के समान कपड़े पहने हुए थे (16:5); मत्ती बताता है कि वहाँ दो स्वर्गदूत थे। मरकुस केवल एक के बारे में बताता है। स्वर्गदूत उन्हें पुनरूत्थान के बारे में बताता है (16:6), परन्तु इसके बाद उन्हें गलील को जाना था जहाँ यीशु उन पर प्रगट होगा (16:7)। भय और सदमें में स्त्रियाँ किसी से कुछ कहे बिना वहाँ से भागीं, क्योंकि वे डर गई थीं (16:8)।

यहाँ पर मरकुस के सुसमाचार का अन्त हो जाता है। 9-20 तक के पद जो कि कई बाइबलों में दिखाई देते हैं, उन्हें बाद में जोड़ा गया है। ये हमारे सुसमाचार की आरम्भिक में नहीं मिलते हैं। केवल दो प्रसंगों का स्थान है जहाँ एक बड़े विभाग को सुसमाचार से जोड़ा गया है। यह हमें कठिनाई देने वाली कोई चीज़ नहीं है। सुसमाचार की आरम्भिक हस्तलिपियों को हाथ से लिखा गया था, अत: हस्तलिपियों में थोड़ी सी भिन्नता है। अधिकांश भिन्नताएँ तो बहुत छोटी हैं। केवल दो स्थानों में (मरकुस 16:9-20 और यूहन्ना 8:1-12) हमारे पास लम्बे प्रसंग है जो मौलिक नहीं हैं, परन्तु बाद में जोड़े गए हैं।

मरकुस यह सूचित करता है कि यीशु गलील में शिष्यों पर प्रगट हुए थे। शायद मरकुस के अन्त में यह बताया गया है कि यीशु यरूशलेम और गलील में कैसे प्रगट हुए थे, उन्हें निर्देश देते हुए और उसके बाद स्वर्ग में उठा लिये गए। तथापि हमारे पास मरकुस 16:1-8 मरकुस के सुसमाचार का वास्तविक रूप है।

पुनरूत्थान एक ऐतिहासिक घटना थी। यह वास्तव में घटी थी यीशु की देह जीवित हो गई थी। एक स्वर्गदूत यह बताने के लिए प्रगट हुआ कि क्या हुआ था। यह किसी तरह का दृष्टिभ्रम नहीं था। स्त्रियाँ यीशु के मृतकों में से जीवित होने की **अपेक्षा** नहीं कर रही थीं। इसके विपरित वे उसकी मृत देह पर लगाने के लिए मसाले खरीद कर लाई थी। पुनरूत्थान ने उन्हें आश्चर्य में डाला और इसी कारण वे बिना किसी से कुछ कहे वहाँ से आ गई थीं।

1. **कहानी हमें मसीही विश्वास में अलौकिकता से छुटकारा पाने को रोकती है।** निस्संदेह कुछ लोग ऐसा करने का प्रयास करेंगे। ऐसे कुछ लोग भी होंगे जो मसीही विश्वास की कहानी को फिर से सुनाना चाहेंगे जिससे इसके बारे में कुछ भी चमत्कारिक न लगे। परन्तु बाइबल को गंभीरता से लिये जाने पर इसकी अलौकिकता से छुटकारा पाना असंभव हो जाता है। यीशु मृतकों में से जी उठा था। ऐसा हुआ था। स्वर्गदूतों ने इसकी घोषणा की थी। धर्मशास्त्र स्पष्ट रूप से एक ऐसे सुसमाचार को प्रस्तुत करता है जिसमें यीशु मृतकों में से जी उठा है। जीवित हुए यीशु के बिना 'मसीहियत' निरर्थक है।

2. **यहाँ हुई घटनाएँ उस प्रत्येक चीज़ का आधार थीं जो मसीही विश्वास की कहानी में बाद में आती हैं।** यह यीशु के दावों का प्रमाण है। यह उस सच्चाई का संकेत और नमूना है कि मृत्यु पर विजय पा ली गई है। यह शैतान की हार है, वह जो लोगों को मृत्यु के भय में रखता है। यह भावी पुनरूत्थान का एक नमूना है। यह उत्पत्ति 3:19 का प्रतिवर्ती है।

   इसी तरह से पुनरूत्थान मसीही अनुभव का आधार है। मसीही को यीशु की पुनरूत्थान की सामर्थ के साथ जोड़ा गया है। वह '*मसीह के साथ जी उठा है।*'

मरकुस के मूल सुसमाचार का अन्त तीव्रता से और सही रूप में 16:8 पर हो जाता है। मरकुस का उद्देश्य उन मूल सच्चाईयों के बारे में बताना था जो गलील में या उसके चारों ओर (मरकुस 1:14-9:1), यहूदियों के मार्ग पर (9:2,10:52) और स्वयं यहूदिया में हुई (11:1-15:47)। यहाँ पर उसने एक बहुत ही संक्षिप्त परिचय (1:1-13) और एक बहुत ही संक्षिप्त अन्त (16:1-8) को जोड़ा है। यीशु के पुनरूत्थान के सत्य के अलावा वह और किसी चीज़ के बारे में नहीं कहता क्योंकि वह उसके उद्देश्य में नहीं था। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह शेष बातों को जानता था: पुनरूत्थान प्रगटन, पिन्तेकुस्त का दिन, कलीसिया के प्रथम दिनों की कहानी। मरकुस इन सब चीज़ों के बारे में जानता था, परन्तु उसका कार्य केवल इस बारे में बताना था कि गलील और यहूदिया में क्या हुआ था उसने उस कार्य को पूरा कर लिया था और इसलिए वह रुक गया।

3. **मरकुस हमारा सामना यीशु के पुनरूत्थान की सच्चाई से कराना चाहता था।** अन्य सुसमाचार लेखक हमें रोचक कहानियाँ सुनाते हैं, परन्तु मरकुस हमारा सामना केवल इस सच्चाई से कराना चाहता है कि यीशु मृतकों में से जी उठा है। यह ही मरकुस का उद्देश्य था। इसमें संदेह नहीं कि वह शेष कहानी को जानता था, परन्तु मरकुस यहाँ समापन करना चाहता था यद्यपि यहाँ पराजित अन्त है, तौभी परमेश्वर चाहता था कि अन्त यहीं हो।

   विश्वास करने की अन्य सभी चीज़ों में पुनरूत्थान पर विश्वास करना

सबसे कठिन है। कहानी हमारे वास्तविकता के दृष्टिकोण पर चुनौती देती है। यह जीवन के बारे में हमारी विचारधाराओं को चुनौती देती है। पुरुष और स्त्री सोचते हैं कि वे जानते हैं कि मृत व्यक्ति जीवित नहीं हो सकता। जीवन के बारे में लोगों का यह सामान्य दृष्टिकोण है। परन्तु यदि इसमें गलती हो तो 'यदि यीशु मसीह मृतकों में से जी उठा हो तो।'

यदि पुनरूत्थान सही है तो परमेश्वर वास्तविक है। आत्मिक संसार वास्तविक है। पवित्रात्मा वास्तविक है। हमारी सभी सांसारिक विचारधाराएँ गलत हैं। पुनरूत्थान हमारे चारों ओर की चीज़ों को घुमा देता है और हमें बताता है कि जितना अधिक हम यह सोचते हैं कि हम जीवन के बारे में जानते हैं। हम उसे नहीं जानते।

देह का पुनरूत्थान इससे जुड़ा है। बाइबल 'मृत्यु पश्चात् जीवन' की किसी अनिश्चितता के बारे में नहीं बोलती। यह पुनरूत्थित देह के बारे में बोलती है, ऐसी चीज़ जो ठोस और शारीरिक हो।

4. **पुनरूत्थान की कहानी क्षमा के एक प्रस्ताव के साथ आई।** '*जाओ उसके चेलों और पतरस से कहो--*' शिष्यों ने यीशु को छोड़ दिया था। उन सब ने उसे कभी न छोड़ने की कसम खाई थी। पतरस ने कहा था कि वह यीशु के साथ मरेगा। परन्तु समय आने पर वे सभी भाग गए और पतरस ने यीशु के साथ किसी भी तरह का संबन्ध होने का इन्कार किया।

   परन्तु वहाँ क्षमा है। '*जाओ उसके शिष्यों और पतरस को बताओ--*' यीशु उनके अविश्वास के विरुद्ध उनके साथ कुछ नहीं करने जा रहा है। उसने उन्हें बताया था कि उसके साथ क्या होगा और उन्होंने उस पर विश्वास नहीं किया था, परन्तु सब सही है। वहाँ क्षमा है।

5. **मरकुस की कहानी हमें बताती है कि कलीसिया का एक भविष्य है।** कहानी का अन्त अचानक से होता है और मरकुस हमारे जानने के लिए इतना पर्याप्त रूप से बताता है कि कहानी आगे भी जारी है। '*वह तुम से पहले गलील को जाएगा।*' यीशु का प्रमुख कार्य गलील में रहा था। अब वह उनसे आगे जा रहा है। वे वहाँ पर उससे मिलेंगे और आगे के निर्देश प्राप्त करेंगे। यीशु का कार्य जारी है!

यीशु महायाजकों तथा शास्त्रियों के पास वापस नहीं गया। वह पेन्तियुस पीलातुस के पास वापस नहीं गया। यीशु की अविश्वासी संसार के सामने स्वयं को दर्शनीय रूप में प्रमाणित करने में कोई रुचि नहीं है। कलीसिया की कहानी उनके साथ जारी रहेगी जो उस पर भरोसा करेंगे। वह उन्हें अपने जीवित होने के बहुत से प्रमाण देगा और यीशु की कलीसिया जारी रहेगी। जीवित हुए प्रभु यीशु में विश्वास रखने के द्वारा इसे जीवित रखा जाएगा।

परिशिष्ट: मरकुस के सुसमाचार की सच्चाईयाँ 'परिचयात्मक' विषयों के संबन्ध में एक विस्तृत विवरण में जाने के लिए इन प्रगटीकरणों की कोई योजना नहीं है, परन्तु इस पर कुछ टिप्पणियाँ अवश्य की जा सकती हैं।

1. **मरकुस द्वारा अपने तरीके से अपनी सामग्री को प्रस्तुत किया जाना स्वीकार्य होना चाहिए, चारों सुसमाचार ऐतिहासिक रूप से विश्वसनीय हैं।** इसके लिए व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए मरकुस यह दावा करता है कि मरकुस 1:21-39 की घटनाएँ 24 घण्टे की अवधि में पूरी हुई, परन्तु विद्वानों का यह मानना है कि मरकुस ने घटनाओं को कृत्रिम रूप में संक्षिप्त किया है और यह कि इस तरह से ऐसा कुछ नहीं हुआ था। तो भी मैं यह कहता हूँ कि मरकुस के स्वयं के प्रस्तुतीकरण को स्वीकार किया जाना चाहिए। प्राय: मरकुस 2:1-3:6 को प्रतिकूल कहानियों का कृत्रिम संग्रह माना जाता है, परन्तु यदि मरकुस 3:6 सत्य कह रहा है और यीशु के जीवन में यदि कोई षड्यन्त्र हुआ था तो कुछ ऐसी घटनाएँ अवश्य हुई होंगी जिनकी वजह से यह प्रतिकूलताएँ उत्पन्न हुईं। 2:1-3:5 घटनाओं की शृंखला का एक सही प्रस्तुतीकरण क्यों नहीं हो सकता है जो कि वास्तव में हुई और उसे बढ़ावा दिया जो मरकुस 3:6? के अनुसार हुआ था ? मैं सुसमाचार लेखकों द्वारा अपनी सामग्री के लिए किये गए दावों में दिलचस्पी रखता हूँ।

2. **मैं मानता हूँ कि मरकुस का सुसमाचार कालक्रमानुसार है।** आधुनिक विद्वानों के समान प्राचीन विद्वान सख्त कालक्रम के लिए परेशान नहीं होते थे, तो भी इस तरह विश्वास करने का कारण है कि मरकुस घटनाओं को एक शृंखला में बताता है। केवल वही है जो 24 घण्टे की अवधि की घटनाओं को (मरकुस 1:21-39 में) कालक्रानुसार बताता है,

और जैसा मैं मानता हूँ यदि मरकुस 2:1-3:6 विरोध के उठने की कहानी के बारे में बताता है। तब कहानियों को या तो शृंखला में होना चाहिए या फिर कम से कम उसी समय की घटनाओं से जुड़ी हों।

मरकुस के सुसमाचार में ऐसा कोई भी बिन्दु विषय नहीं जो **प्रगट रूप में** शृंखला से बाहर का हो, सिवाय 6:14-29 के पूर्वदृश्य के छोड़ ।

3. **मरकुस की बनावट** को देखकर यह कहा जा सकता है मरकुस 8:27-9:1 पर ध्यान देने से इसमें एक संतुलन दिखाई देता है।

क. आमुख (1:1-13)

ख. गलील में आधारित सेवकाई (1:14-8:26)

1. कफरनहूम में विरोध का उठना (1:14-3:6)

2. राज्य का भेद (3:7-6:6)

3. गलील में संघर्ष का सर्वोच्च कारण (6:7-7:23)

4. हेरोदेस और फरीसियों से बचना (7:24-8:26)

ग. यीशु का प्रकाशन (8:27-9:1)

ख. यहूदिया में यात्रा और सेवकाई (9:2-15:47)

1. शिष्यों को तैयार करना (9:2-10:52)

2. फलरहित इस्राएल (11:1-19)

3. प्रश्नों का दिन (11:20-13:37)

4. फसह के समय पर षड्यन्त्र (14:3-15:47)

क. आमुख (16:1-8)

4. मैं मानता हूँ कि **मरकुस के सुसमाचार की उत्पत्ति का पारम्परिक दृष्टिकोण मूल रूप से सही है।**

आरम्भिक कलीसिया ने इस बात को माना कि लेखक यूहन्ना मरकुस, पतरस का व्याख्याता था जो अनुयायी और व्याख्या करने वाला है और यह कि इस सुसमाचार का उद्‌भव रोष में हुआ था। इरेनियुस का कहना है कि पतरस के निर्गमन के पश्चात् मरकुस के सुसमाचार को लिखा गया था। यह

64 ईस्वी में हुआ होगा (पतरस की मृत्यु के पश्चात्) परन्तु यदि निर्गमन का अर्थ शहर से चले जाने से है तो यह पहले भी हो सकता है।

ऐसा लगता है कि मरकुस 50 ईस्वीं में सिकन्दरिया को गया होगा संभवत: मरकुस ने 50 ईस्वीं से पूर्व ही अपने सुसमाचार को पूरा कर लिया था।

5. मरकुस का सुसमाचार सभी सुसमाचारों में से सबसे ''मौलिक'' है और इसकी सामग्री मत्ती की तुलना में अधिक पुरानी है।

विद्वान लोग सुसमाचार लेखकों द्वारा पहले के सुसमाचारों से सामग्री लिये जाने के विषय में तर्क करते हैं। मत्ती और मरकुस की निश्चय ही सामान्य सामग्री है। मेरा स्वयं का दृष्टिकोण यह है कि मरकुस के सुसमाचार में सामग्री आरम्भिक और सरल अवस्था में है। जिसने भी मत्ती के सुसमाचार के बाद मरकुस के सुसमाचार पर कार्य किया है, इस तरह का प्रश्न करता है, 'क्या मरकुस ने मत्ती के साथ कार्य किया था।' जिसका जवाब प्राय: मैं 'नहीं' में देता हूं। यदि प्रश्न को किसी और तरह से पूछा जाए तो यह कठिन हो जाता है। जिसने भी मरकुस के सुसमाचार के बाद मत्ती पर कार्य किया है, इस तरह का प्रश्न करता है 'क्या मत्ती ने मरकुस के साथ कार्य किया था?' और इसका जवाब मैं इस तरह से देता हूं 'हो सकता है।' 'रीच यंग रुलर' का अध्ययन करने वाला यह सोच सकता है कि मत्ती ने मरकुस को थोड़ा सा बदला है परन्तु ऐसा कोई नहीं सोच पाता कि मरकुस ने मत्ती को बदला है (देखें मत्ती 19:16-23; मरकुस 10:17-23) अंजीर के वृक्ष को श्राप देने का एक अध्ययन (मत्ती 21:18-22; मरकुस 11:12-14) प्रत्येक को एक ही परिणाम पर आने के लिए विवश करता है। मत्ती एक 'परिवर्तित' संस्करण हो सकता है और मरकुस के इसके पहले से होने की संभावना अधिक है।

तौभी मैं इसे इस तरह से रखने का सही तरीका नहीं मानता हूं। मेरे मन में इस बात को लेकर कोई शंका नहीं है कि मरकुस का संस्करण पुराना है तथा मत्ती में कुछ विशेष विषयों पर बल देने के लिए 'मोड़ दिया गया है' तौभी मैं यह नहीं सोचता कि मत्ती ने किसी भी तरह की मूल सच्चाई को बदला है। तथापि, आरम्भिक मसीही इस बात पर बल देते थे कि मत्ती के सुमसाचार पहले लिखा गया तथा मरकुस के सुसमाचार को उसके बाद लिखा गया और मैं उन

पर विश्वास करने को प्रवृत्त हुआ हूं।

मरकुस की सामग्री मत्ती में पाई जाती है। यदि मरकुस ने मत्ती के पश्चात् लिखा तो इसे इच्छापूर्वक संक्षिप्त कर दिया। इसे किसी दबाव से छोटा नहीं किया गया था। (मरकुस मत्ती की तुलना में कहानियों को प्रायः पूरा सुनाता है) परन्तु कुछ सामग्री को छोड़ देने के द्वारा।

यदि मत्ती ने मरकुस के पश्चात् लिखा तो उसने सामग्री को थोड़ा संक्षिप्त कर अपनी सामग्री जोड़ते हुए मरकुस को सम्मिलित किया। इस दृष्टिकोण से हम मरकुस की अवहेलना कर देते हैं। अन्ततः, इसे मत्ती में सम्मिलित किया गया था तो मरकुस के बारे में चिन्तित क्यों हों?

मैं नहीं सोचता कि इन दृष्टिकोणों में से वास्तव में क्या हुआ होगा। 'सुसमाचार उद्‌भव' के अपने दृष्टिकोण को मैं चित्र द्वारा प्रस्तुत कर सकता हूं:

मत्ती-मरकुस-लूका की सामग्री

(मरकुस के सुसमाचार के अस्तित्व में लिखे जाने से पूर्व, पतरस द्वारा इसका प्रयोग प्रचार में भी हुआ)

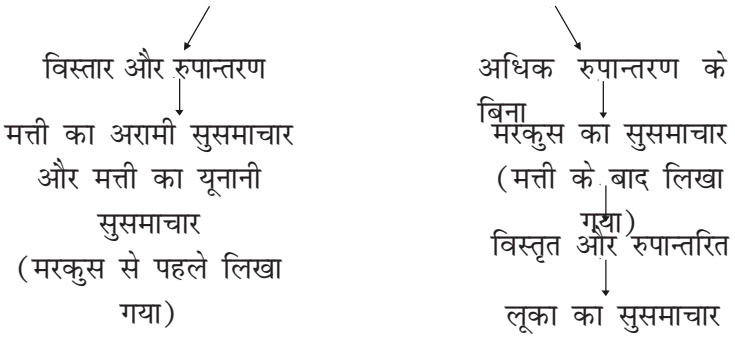

यदि कोई आरम्भिक मसीही टिप्पणियों तथा स्वयं सुसमाचारों से संबंधित अध्ययन करें तो यह दोनों चित्र **दोनों** पर प्रेरित करने वाला हो सकता है। मरकुस की सामग्री मत्ती की तुलना में पुरानी और कम रुपान्तरित है, तौभी मैं यह नहीं सोचता कि हम इस सच्चाई का प्रयोग इस पर तर्क करने के लिए कर सकते हैं कि मत्ती ने प्रत्यक्ष रूप में मरकुस से रुपान्तरण किया। मत्ती मारकन **सामग्री** का रुपान्तरण है, परन्तु संभवतः मरकुस का सुसमाचार नहीं।

तौभी इससे कोई अधिक फर्क नहीं पड़ता। मरकुस का सुसमाचार पहले तीन सुसमाचारों में से सबसे अधिक 'मूलभूत' प्रतीत होता है तथा अन्य दो इसकी सामग्री का विस्तार प्रतीत होते हैं। इस बात की ठीक ठीक शृंखला को कि यह कैसे हुआ, संभवतः हम कभी जान नहीं पाएंगे। निस्संदेह यह एक बहुत ही जटिल विषय है।

कलीसिया एक चौगुने सुसमाचार की वारिस है तथा प्रत्येक पुस्तक पर पृथक रुप से विचार किया गया है। मैं मानता हूं कि एक प्रचारक इस तरह से कह सकता है कि लूका मरकुस की सामग्री के बारे में जानता था और वह इसे ले सकता था, क्योंकि मत्ती के सुसमाचार में मरकुस के सुसमाचार से आई उसी तरह की सामग्री थी (जिसके बारे में कहा जा सकता है कि वह मरकुस से रुपान्तरित थी)।

मत्ती का उद्देश्य मरकुस के उद्देश्य की तुलना में अधिक सुस्पष्ट है। मत्ती मरकुस की तुलना में एक मामले का अधिा स्पष्ट बना रहा है। मरकुस भी एक मामले को बना रहा है परन्तु मत्ती की तुलना में यीशु के बारे में उसकी कहानियों पर संचालन धर्म वैज्ञानिक रुप में झुका हुआ है। पुरानी धारणा कि मरकुस यीशु के बारे में ऐतिहासिक सच्चाइयों को ऐसे 'सीधे' रूप में देता है जैसा हम उन्हें ग्रहण करना पसंद भी करेंगे, मुझे मूलभूत रूप से सही प्रतीत होता है, यद्यपि विलियम रेंडे के दिनों से ही इसे महान चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

मरकुस की विशुद्ध संच्चाइयों में रुचि रही है। इसी कारण मत्ती की तुलना में उसके उद्देश्य को समझना कठिन हो जाता है। उसकी रुचि सच्चाइयों को एक विशेष रूप में प्रस्तुत करने की अपेक्षा उनमें अधिक थी। यद्यपि उसका सुसमाचार अन्यों की तुलना में छोटा है, तौभी उसकी कहानियों को विस्तृत रूप में बताया गया है।

मत्ती के श्रोता यहूदी थे, परन्तु मरकुस के श्रोता प्रमुख रूप से अन्यजाति थे। मसीही कलीसिया की आरम्भिक परम्पराएं बताती हैं कि मरकुस पतरस का व्याख्याता था (शिष्य, सहकर्मी)। यह बताता है कि मरकुस का सुसमाचार मसीहियों के लिये मैं लिखा गया था, और हम यह जानते हैं कि सुसमाचार इसके अनुसार सही बैठता है। मरकुस उन चीज़ों की व्याख्या करता है जो

अन्यजातियों के लिए संभवत: कठिन होंगी। मत्ती यहूदी रिवाज़ों का वर्णन नहीं करता। मरकुस करता है।

अन्तिम टिप्पणी

1 मैंने 'द इन्टरप्रिटेशन ऑफ मॉर्क' डब्ल्यू टेलफोर्ड, SPACK, 1985, पृ. 3), और रेडे के 'मेसिएसगेमिनिज़ इन डेन इवेंजेलिन (1901) से उद्धरित से किया है।